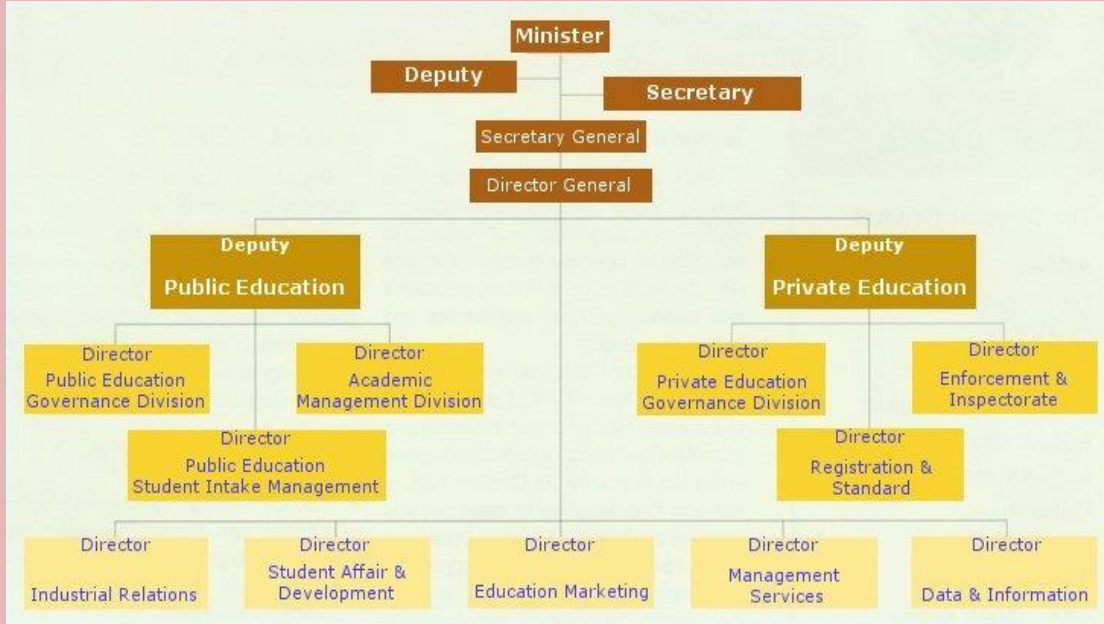




MAED 602

Semester III

शैक्षिक प्रबंधन एवं प्रशासन Educational Management and Administration



शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड			
प्रोफेसर जे0के0 जोशी निदेशक शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर एन0 एन0 पाण्डेय(सदस्य) शिक्षा संकाय एम० जे० पी० रुहेलखंड, विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तरप्रदेश	प्रोफेसर गिरिजेश कुमार (सदस्य) शिक्षा संकाय एम० जे० पी० रुहेलखंड, विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तरप्रदेश	प्रोफेसर रोमेश वर्मा(सदस्य) शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
डॉ0 दिनेश कुमार सहायक प्रोफेसर उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 रजनी रंजन सिंह सहायक प्रोफेसर उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 प्रवीण कुमार तिवारी सहायक प्राध्यापक उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	सुश्री ममता कुमारी सहायक प्रोफेसर उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
डॉ0 कल्पना पांडे लखेड़ा सहायक प्राध्यापक उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्रीमती मनीषा पंत परमर्शदाता उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री सिद्धार्थ पोखरियाल संविदा शिक्षक उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	
पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक		इकाई संयोजक एवं संपादक	
डॉ दिनेश कुमार सहायक प्राध्यापक शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी,		श्री सिद्धार्थ कुमार पोखरियाल अकादमिक सहायक शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी,	
इकाई लेखन	इकाई संख्या	इकाई लेखन	इकाई संख्या
डॉ० नीरा गौतम सहायक प्रोफेसर, सेंट जेविएर कॉलेज पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना, बिहार	1, 2, 3, 4.	डॉ० दीपा मेहता सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी	5, 6, 7.
डॉ० आलोक गडिया सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी	8, 9.	डॉ० शिक्षा तिवारी सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटद्वार, उत्तराखण्ड	10

ISBN-13-978-81-928871-4-2

समस्त लेखों/पाठों से सम्बंधित किसी भी विवाद के लिए सम्बंधित लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का जूरिसडिक्शन हल्द्वानी (नैनीताल) होगा।

कापीराइट: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय प्रकाशन वर्ष: 2014 पुनः प्रकाशन - 2022

संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक: एम0पी0डी0डी0, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139, (नैनीताल)

शैक्षिक प्रबंधन एवं प्रशासन
Education Management and Administration
MAED-602 Semester III

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
1	शैक्षिक प्रबंध तथा शैक्षिक प्रशासन का विकास	1 -14
2	वैज्ञानिक प्रबंध का सिद्धांत प्रशासनिक विचारधारा एवं , नौकरशाही का सिद्धांत	15 -30
3	प्रशासन का मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत एवं कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति	31 -46
4	शैक्षिक प्रशासन की नूतन प्रवृत्तियाँ	47 -65
5	नेतृत्व का अर्थ एवं प्रकृति और नेतृत्व के सिद्धान्त	66 -83
6	नेतृत्व की शैलियाँ	84 -91
7	नेतृत्व का मापन	92-99
08	शैक्षिक नियोजन	100-112
09	पर्यवेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा और प्रकार	113-122
10	शैक्षिक नियोजन, व्यवस्था तथा पर्यवेक्षण कार्यक्रम संरचना	123-140

इकाई 1 : शैक्षिक प्रबंध तथा शैक्षिक प्रशासन का विकास Educational Management and Development of Educational Administration)

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 शैक्षिक प्रबंध
 - 1.3.1 परिभाषायें एवं विशेषतायें
- 1.4 शैक्षिक प्रशासन के प्रकार
- 1.5 शैक्षिक प्रशासन का विकास
 - 1.5.1 परम्परावादी युग
 - 1.5.2 नव परम्परावादी युग
 - 1.5.3 आधुनिक विचारधारा का युग
- 1.6 सारांश
- 1.7 शब्दावली
- 1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आज हम जिस युग में जी रहे हैं वह संगठनों का युग कहा जाता है। परिवार, अस्पताल, सरकार, स्वयं सेवी संस्थायें, क्लब, बाजार आदि सभी हमारे दैनिक जीवन से जुड़े संगठन हैं। कोई भी संगठन चाहे कितना भी बड़ा या छोटा क्यों नहीं हो, प्रबंध के बिना वह अपने लक्ष्यों / उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है। प्रबंध के सहारे ही ये संगठन अपनी निरंतरता और गुणवत्ता को बढ़ाये रखते हैं। कोई भी शैक्षणिक संस्था (चाहे वह स्कूल या कॉलेज हो) एक विशिष्ट प्रकार का संगठन है जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों में ज्ञान एवं कुशलता का विकास करना है जिससे कि वे समाज को उन्नत बनाने में अपना योगदान दें सकें। शैक्षणिक संस्थाओं को सभी गतिविधियों को सफल बनाने में प्रबंध की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

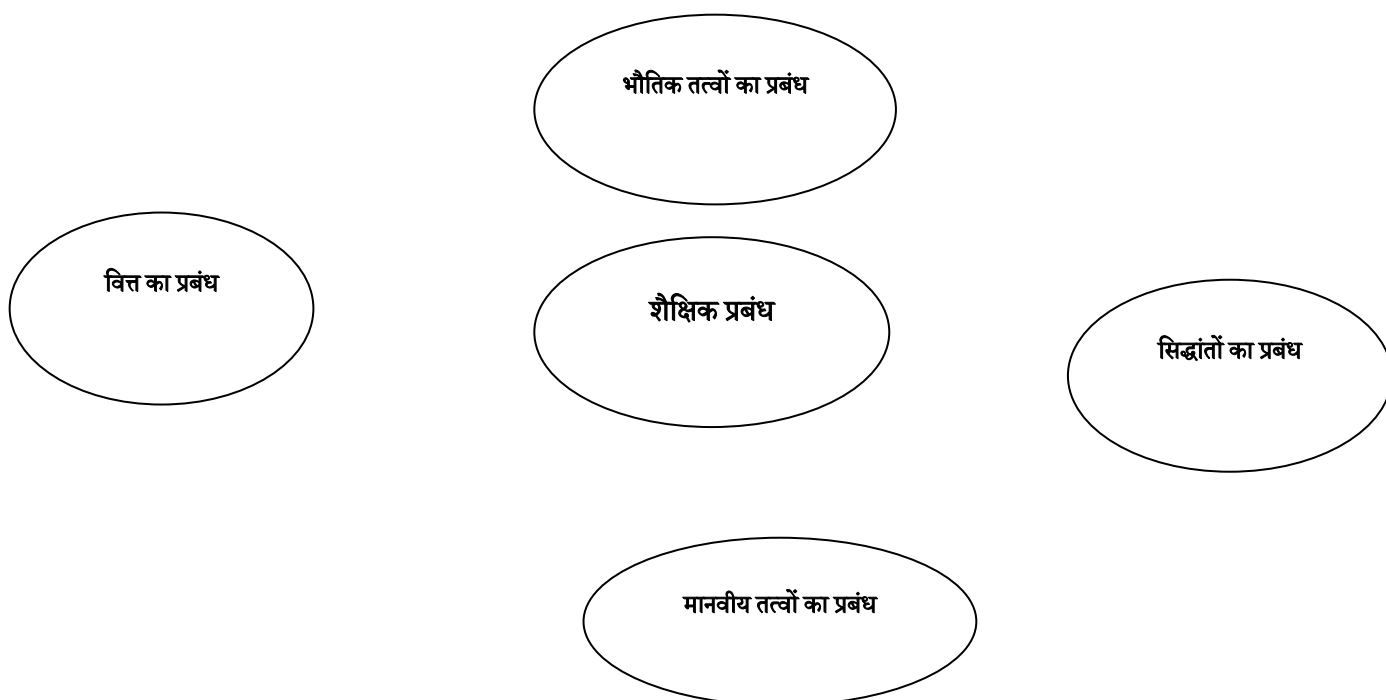
- शैक्षिक प्रबंध की परिभाषाओं एवं अर्थ को बता सकेंगे।
- शैक्षिक प्रबंध की विशेषताओं को बता सकेंगे।
- शैक्षिक प्रशासन के विभिन्न प्रकारों को बता सकेंगे।
- शैक्षिक प्रशासन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को बता सकेंगे।

1.3 शैक्षिक प्रबंध (Educational Management) :

यहाँ शैक्षिक प्रबंध की अवधारणा पर प्रकाश डालने से पूर्व प्रबंध शब्द को समझना नितांत आवश्यक है। प्रबंध मनुष्य की सभी क्रियाओं में अंतर्व्याप्त है। यह सभी प्रकार की सामूहिक और संगठित क्रियाओं को एकीकृत करने की शक्ति है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति अपने सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सामूहिक प्रयास करते हैं तब उनकी क्रियाओं व प्रयासों को समन्वित किया जाता है। इसके अतिरिक्त संसाधनों को इस तरह से संगठित और उपयोग करना पड़ता है कि अनुकूलतम परिणामों की प्राप्ति हो सके। पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये मानवीय प्रयासों और संसाधनों को एकीकृत करके उन्हें कार्यात्मक एवं फलदायक बनाने की प्रक्रिया ही प्रबंध कहा जाता है। यह संगठनात्मक जीवन की आधारभूत, समन्वयकारी एवं जीवन उत्प्रेरक प्रक्रिया है। जैसे-जैसे संगठित क्रियाओं के क्षेत्र, आकार और जटिलता में वृद्धि होती है वैसे वैसे प्रबंध कार्य की महता बढ़ती है। प्रत्येक शिक्षण संस्थान एक संगठन के रूप में कार्य करता है जिसका उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास करना होता है। यह संगठन जिन तत्वों से मिलकर बना होता है, वे चार प्रकार के होते हैं:

- **भौतिक(Physical):** इसके अंतर्गत विद्यालय भवन, फर्नीचर, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, वर्क शॉप, खेल का मैदान, छात्रावास, श्रव्य दृश्य सामग्री आदि सभी आते हैं।
- **मानवीय(Human):** इसके अंतर्गत छात्र, शिक्षक, प्रधानाचार्य/ प्राचार्य, प्रबंध कमिटी के सदस्य, शिक्षा विभाग के अधिकारी, प्रसिद्ध शिक्षाविद् विद्यालय पर्यवेक्षक आदि शामिल हैं।
- **वित्तीय(Financial):** यह किसी शैक्षणिक संस्था के वित्तीय मुद्दों जैसे विद्यालय/कॉलेज की फ़ीस, अनुदान तथा कोष से सम्बंधित होता है।
- **सैद्धांतिक(Theoretical):** शैक्षणिक संस्था को चलने हेतु अन्य तत्व जैसे-समय सारणी, अनुशासन, पाठ्य सहगामी क्रियायें, नियम, सिद्धांत आदि इसके अंतर्गत आते हैं।

शैक्षिक प्रबंध यह शक्ति है जो इन चार प्रकार के तत्वों के बीच तालमेल बैठा कर शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में उस संगठन को अग्रसर करता है। शैक्षिक संगठन को नीचे दिये गये चित्र की सहायता से समझा जा



1.3.1 परिभाषायें एवं विशेषतायें (Definitions & Features):

हैरोल्ड कूंटज: औपचारिक रूप से संगठित वर्गों के साथ तथा उनके द्वारा कार्य करवाने की कला का नाम ही प्रबंध है।

जेम्स एल लुंडी: प्रबंध मुख्यतः विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये दूसरों के प्रयत्नों को नियोजित, समन्वित, प्रेरित और नियंत्रित करने का कार्य है।

ग्लुइक: प्रबंध से आशय किसी संस्था के मानवीय और भौतिक संसाधनों के प्रभावपूर्ण प्रयोग से है।

जार्ज टेरी: प्रबंध लोगों से कार्य करने की कला है।

हेनरी फेयोल्: प्रबंध करने से आशय पूर्वानुमान लगाने एवं योजना बनाने, संगठन की व्यवस्था करने, निर्देश देने, समन्वय करने तथा नियंत्रण करने से है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रबंध वह विशिष्ट प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत सामूहिक प्रयासों की सहायता से मानवीय और भौतिक संसाधनों का उपयोग करके संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है। इसका क्षेत्र काफी व्यापक है तथा इसमें नियोजन, निर्देशन, अभिप्रेरण, समन्वय तथा नियंत्रण आदि कार्य शामिल हैं। दूसरी ओर, शैक्षिक प्रबंध एक संकीर्ण अवधारणा है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबंधक अन्य लोगों के साथ सहयोग और समन्वय का वातावरण बनाते हुये शिक्षण संस्थान में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शैक्षिक एवं सह शैक्षिक क्रियाओं व गतिविधियों संगठन एवं संचालन करता है। इसकी विशेषतायें निम्नलिखित हैं:

1) गत्यात्मक प्रक्रिया (Dynamic Process): शैक्षिक प्रबंध एक गत्यात्मक प्रक्रिया है क्योंकि यह समय, परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार ढलती एवं बदलती रहती है।

2) **अनवरत प्रक्रिया (Continuous Process):** यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो अनवरत रूप से चलती है। पूर्व निर्धारित शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति के बाद भी यह प्रक्रिया चलती रहती है।

3) **संगठित प्रक्रिया Organized Process):** यह एक संगठित प्रक्रिया इस लिये है क्योंकि इसमें शैक्षणिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों का समूह एक जुट होकर कार्य करता है।

4) **उद्देश्यों की विद्यमानता (Existence of Objectives):** शैक्षिक प्रबंध शैक्षणिक संगठन के उद्देश्यों से जुड़ी हुई प्रक्रिया है। उद्देश्य उन गन्तव्यों को निर्देशित करते हैं जिन्हें शैक्षणिक संगठन द्वारा प्राप्त किया जाना है।

5) **संसाधनों के बीच सम्बन्ध (Relationship among resources):** शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये प्रबंधक के सम्मुख सभी संसाधनों को उपलब्ध करवाया जाता है। वह अपने ज्ञान और अनुभव का प्रयोग करते हुये इनके बीच संबंधों की स्थापना करता है और वांछित परिणाम की प्राप्ति करता है।

6) **सामाजिक प्रक्रिया (Social Process):** शैक्षिक प्रबंध एक सामाजिक प्रक्रिया है क्योंकि इसमें मानवीय संसाधन की विशिष्ट भूमिका होती है। प्रबंधक मानवीय संसाधनों को वांछित परिणामों की प्राप्ति की दिशा में क्रियाशील बनाता है।

7) **सार्वभौमिक प्रक्रिया (Universal Process):** शैक्षिक प्रबंध की प्रक्रिया के तत्व - नियोजन, संगठन, नियुक्तिकरण, निर्देशन और नियंत्रण - ये सभी किसी भी देश व संस्कृति की शैक्षणिक संस्थाओं में कमोवेश देखे जा सकते हैं।

8) **अंतर-विषयक उपागम (Interdisciplinary Approach):** यद्यपि शैक्षिक प्रबंध ज्ञान की नवीन शाखा के रूप अपना अस्तित्व बनाने हेतु प्रयासरत है परन्तु इसके सिद्धांत और अवधारणायें व्यवसायिक प्रबंध और मनोविज्ञान से ग्रहण किये गये हैं।

9) **अधिकार सत्ता (Authority):** प्रबंध एक अधिकार सत्ता की प्रणाली है। प्रबंधक ही किसी शैक्षणिक संस्था में कार्य निष्पादन हेतु आदेश - निर्देश देते हैं, नियम - विनियम बनाते हैं तथा कार्य प्रगति का मूल्यांकन करते हैं।

10) **अदृश्य कौशल (Intangible skill):** कुछ विद्वानों ने इसके स्वरूप को अमूर्त और अस्पृश्य बताया है। उनका मत है कि किसी संगठन में प्रबंध कि जानकारी उसके द्वारा प्राप्त किये गये परिणामों से होती है।

11) **संयोगिक प्रकृति (Contingent Nature):** शैक्षणिक वातावरण सदैव ही बाह्य वातावरण से प्रभावित होता है। यही कारण है कि शैक्षिक प्रबंध की विधियाँ, तकनीक और सिद्धांत- ये तीनों ही परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. शैक्षिक प्रबंध के बीच एकीकरण करके शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु वातावरण का निर्माण करता है।
2. शैक्षिक प्रबंध के कार्य नियोजन, निर्देशन, अभिप्रेरण, तथाहोते हैं।
3. शैक्षिक प्रबंध मुख्यतः भौतिक, वित्तीय एवं तत्वों के बीच तालमेल करता है।

1.4 शैक्षिक प्रशासन के विभिन्न प्रकार (Different Types of Educational Administration):

शैक्षिक प्रशासन का शाब्दिक अर्थ शिक्षा के वातावरण में प्रशासन के नियमों एवं सिद्धान्तों के उपयोग से है। वास्तव में प्रशासन शब्द लैटिन भाषा के मूल शब्द "minister" से लिया गया है जिसका मतलब होता है – सेवा (service) या वो कार्य जो दूसरों के कल्याण के लिये किया जाये। सरलतम शब्दों में, प्रशासन एक चेतना पूर्ण ध्येय की प्राप्ति के लिये किया जाना वाला नियोजित कार्य है। लुथर के शब्दों में "प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों को करवाने से, निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति से है।" प्रत्येक संगठन के अंतर्गत कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एकत्रित किये गये व्यक्तियों का समूह होता है। प्रशासन वह शक्ति है जो किसी पूर्व निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति हेतु किसी संगठन का नेतृत्व, पथ प्रदर्शन एवं निर्देशन करता है। यह एक उच्च स्तरीय प्रकार्य है जो किसी संगठन के उद्देश्य या नीतियों से संबंध रखता है। प्रशासन का प्रमुख विषय सत्ता या अधिकार माना जाता है। सत्ता या अधिकार किस बिन्दू पर आधारित है और उनका प्रयोग किस प्रकार किया जा रहा है इस आधार पर प्रशासन के दो प्रकार बताये गये हैं। इन दोनों का उल्लेख निम्नांकित है –

केन्द्रीकरण (Centralization): यह वह व्यवस्था है जिसमें निर्णयन अधिकारों एवं दायित्वों को उच्च प्रशासक आपने पास सुरक्षित रख लेते हैं तथा निम्न स्तरों पर उनका प्रत्यायोजन नहीं करते हैं। उदाहरण के लिये, यदि किसी विश्वविद्यालय में फ़ीस बढ़ोतरी से संबंधित निर्णय सिर्फ उसके सीनेट के सदस्यों ही द्वारा लिया जाता है तब उसे केन्द्रीकरण कहा जायेगा। इसके लक्षण निम्नांकित हैं :

- निर्णय-सत्ता उच्च स्तर पर केन्द्रीय बिन्दू पर पर संकेंद्रित होते हैं।
- संस्था के सभी निर्णय उच्चाधिकारियों द्वारा लिये जाते हैं।
- अधीनस्थ केवल आदेशानुसार कार्य करते हैं, निर्णय नहीं लेते हैं।
- अधिकारों का प्रत्यायोजन बहुत कम किया जाता है।
- सारे अधिकार उच्च प्रशासकों के पास सुरक्षित होते हैं।

विकेंद्रीकरण (Decentralization): यह वह व्यवस्था है जिसमें संगठन की छोटी से छोटी इकाई तक, जहाँ तक कि व्यवहारिक हो निर्णयन अधिकारों एवं दायित्व का वितरण किया जाता है। उदाहरण के लिये, यदि किसी विश्वविद्यालय में परीक्षा प्रणाली में सुधार से संबंधित निर्णय में उसके शिक्षकों के अतिरिक्त अभिभावकों, समाज के बुद्धिजीवी लोगों, नीति निर्माताओं, विभिन्न संकायों के छात्र प्रतिनिधियों आदि का सुझाव लिया जाता है तब ऐसी व्यवस्था को विकेंद्रीकरण प्रशासन कहते हैं। इसके लक्षण निम्नांकित हैं :

- यह संगठन में प्रत्येक स्तर सत्ता के व्यापक वितरण का परिणाम है।
- इसमें अधीनस्थों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।
- यह प्रत्यायोजन का विकसित रूप है।

- इसमें संगठन के निचले पदों तक अधिकाधिक मात्रा में निर्णय लिये जाते हैं जो अत्यंत महत्व के होते हैं।
- उच्च प्रशासक आपने अधीनस्थों के निर्णयों का प्रतिदिन मूल्यांकन नहीं करते हैं वरन् यह मानते हैं कि निर्णय ठीक ही लिये गये होंगे।

परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रत्येक संगठन में प्रशासन का स्वरूप केन्द्रीकृत और विकेन्द्रीकृत – दोनों ही होता है। पूर्ण विकेन्द्रीकरण किसी भी संगठन में संभव नहीं है क्योंकि इसका अर्थ संगठन पर कोई नियंत्रण नहीं वाली स्थिति होगी जो कि वास्तव में संभव नहीं है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. केन्द्रीकरण के अंतर्गत सिर्फ निर्णयों का पालन करते हैं।
2. विकेन्द्रीकरण के अंतर्गत एवं का निचले स्तर पर वितरण किया जाता है।

1.5 शैक्षिक प्रशासन का विकास (Development of Educational Administration)

अब तक हम यह जान चुके हैं कि शैक्षिक प्रशासन का उद्गम स्थल सामान्य प्रशासन रहा है। जैसे जैसे ज्ञान के भंडार में अभिवृद्धि होती गई है तथा सामाजिक परिवर्तनों को महसूस किया गया है वैसे वैसे सामान्य प्रशासन में नये नये आयाम एवं विचारधारयें जुड़ती गयीं हैं। इस नवीनीकरण का सीधा असर शैक्षिक प्रशासन के स्वरूप पर पड़ा है। इसमें नये नये संप्रत्यय एवं अवधारणायें जुड़ने से इसका दायरा विस्तृत हो गया है। शैक्षिक प्रशासन के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के लिये सामान्य प्रशासन के विकास के विभिन्न अवस्थाओं को जानना आवश्यक है। सामान्य प्रशासन की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन तीन युगों में बांटकर किया जा सकता है।

1.5.1 परंपरावादी युग 1900 – 1935(Classical Era):

इस युग को प्रशासन के व्यवस्थित अध्ययन की शुरुआत का युग माना जाता है। इस युग के प्रवर्तकों के अनुसार प्रशासन किसी संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन मात्र है। विचारधारा के विकास के आधार पर इस युग के तीन निम्नलिखित भाग हैं:

- **वैज्ञानिक प्रबंध का युग (Scientific Management Era):** इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप वृहद् एवं यंत्रिकृत उत्पादन प्रत्येक उद्योग का लक्ष्य बन गया। इस लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में वैज्ञानिक प्रबंध की शुरुआत की गई। यह कार्य को संगठित एवं ज्ञान के आधार करने की पद्धति है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो रुढ़िवादी, परंपरागत एवं अनुमानित धारणाओं के स्थान पर तर्कों, तथ्यों, प्रयोग एवं विश्लेषण पर आधारित सिद्धांतों को स्वीकार करती है। इस विचारधारा के विकास में अनेक विद्वानों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसमें चार्ल्स बैबेज, टेलर, हेनरी गैट, फ्रेंक गिलब्रेथ, लिलियन गिलब्रेथ, कुक आदि हैं। परन्तु इस विचारधारा में सबसे अधिक महत्वपूर्ण

एफ० डब्लू० टेलर का है। इसलिये टेलर को "वैज्ञानिक प्रबंध का जन्म दाता" माना जाता है तथा उनकी विचारधारा को टेलरवाद भी कहा जाता है।

- **प्रशासनिक विचारधारा का युग (Administrative Theory Era):** यह विचारधारा प्रशासन के उच्च स्तर पर सामान्य पहलूओं से संबंधित रही है। इसके प्रवर्तकों में हेनरी फेयोल का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने प्रशासन को सार्वभौमिक कौशल बताते हुये उससे संबंधित 14 मार्गदर्शक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो इस प्रकार हैं:

1) **कार्य विभाजन (Division of Labour):** फेयोल के मतानुसार प्रत्येक कार्य को सुविधाजनक कार्यांशों में विभाजित करके अलग-अलग कार्यांश को उसके लिये उसके लिये योग्य व प्रशिक्षित व्यक्ति से सम्पन्न कराया जाना चाहिये।

2) **अधिकार एवं दायित्व (Authority and responsibility):** उनके अनुसार किसी संगठन में अधिकार और दायित्व साथ-साथ चलते हैं। दायित्वों के बिना अधिकार नहीं चलने चाहिये।

3) **अनुशासन (Discipline):** अनुशासन से आशय अपने से उच्च अधिकारी की आज्ञा का पालन करने नियमों के प्रति आस्था तथा संबंधित अधिकारियों के प्रति आदर भाव रखने से है। किसी संगठन में अच्छा अनुशासन उच्च कोटि के सुयोग्य प्रशासकों, स्पष्ट एवं निष्पक्ष नियमों तथा समझौतों, विवेकपूर्ण दंड विधान एवं न्यायोचित व्यवहार से ही स्थापित किया जा सकता है।

4) **आदेश की एकता (Unity of Command):** इसका आशय यह है कि एक कर्मचारी को समस्त आदेश एक ही अधिकारी से मिलने चाहिये। आदेश की एकता के अभाव में अनुशासन भंग होने की आशंका बनी रहती है तथा संगठन में सर्वत्र भ्रान्ति का वातावरण छाया रहता है।

5) **निर्देश की एकता (Unity of Direction):** इस सिद्धान्त का आशय यह है कि अमुक उद्देश्य से संबंधित क्रियाएँ अमुक वर्ग या समूह द्वारा ही सम्पन्न की जानी चाहिये तथा प्रत्येक समूह का एक ही अधिकारी होना चाहिये।

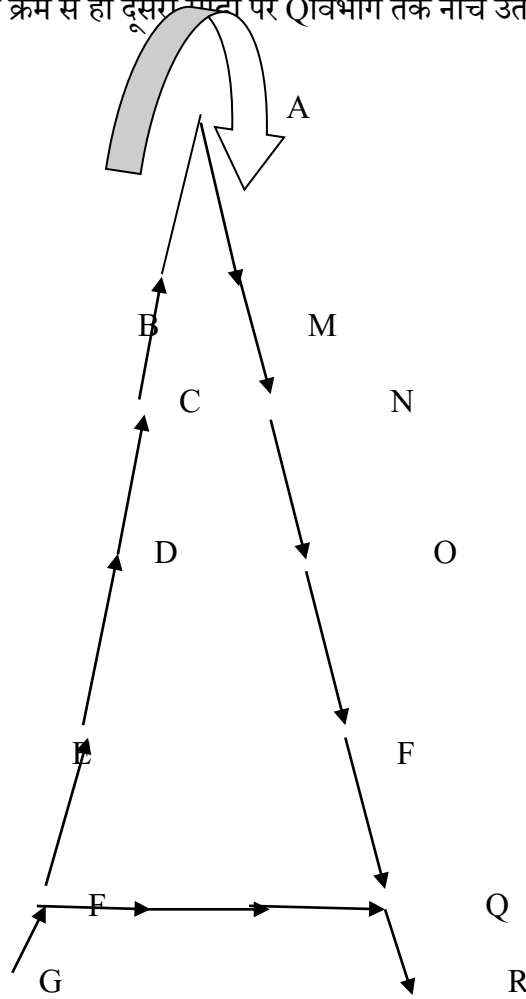
6) **व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा सामान्य हितों को प्राथमिकता (Subordination of individual interests to the common good):** फेयोल के अनुसार एक कुशल प्रशासक को चाहिये कि वह संस्था के हितों एवं व्यक्तिगत स्वार्थ के बीच समन्वय एवं सामंजस्य बनाये रखें। यदि कभी इन दोनों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा सामान्य हितों को प्राथमिकता चाहिये।

7) **पारिश्रमिक (Remuneration):** फेयोल के अनुसार कर्मचारियों के पारिश्रमिक की दर अथवा भुगतान की पद्धति उचित व संतोषप्रद होनी चाहिये। यदि भुगतान की पद्धति उचित होगी तो कर्मचारी सदैव संतुष्ट रहेंगे तथा संबंधों में कभी तनाव नहीं होगा। उन्होंने कर्मचारियों को प्रोत्साहन देने के लिये गैर वित्तीय प्रेरणायें अपनाने पर भी बल दिया।

8) **केन्द्रीकरण (Centralization):** किसी संगठन में केन्द्रीकरण की नीति अपनायी जाये या विकेंद्रीकरण की, इसका निर्णय संगठन के व्यापक हितों, वहाँ काम करने वाले लोगों की मनोभावनाओं तथा कार्य की प्रकृति आदि सभी तथ्यों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद ही करना चाहिये। प्रत्येक ऐसी बात जो अधीनस्थों के

महत्व में वृद्धि करती है, विकेंद्रीकरण कही जाती है तथा जो अधीनस्थों के महत्व को कम करती है केन्द्रीकरण की सूचक होती है।

9) सोपान श्रृंखला (Scalar Chain): सोपान श्रृंखला से तात्पर्य सर्वोच्च पदाधिकारी से लेकर निम्नतम पदाधिकारी के बीच संपर्क की व्यवस्था के क्रम से है। फेयोल के मतानुसार संस्था के पदाधिकारी उपर से नीचे की ओर एक सीधी रेखा के रूप में संगठित होने चाहिये तथा किसी भी अधिकारी को अपनी सत्ता श्रेणी का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। इस व्यवस्था को नीचे दिए गये चित्र से स्पष्ट किया गया है। यहाँ दोहरी सीढ़ी GAR के माध्यम से श्रेणी श्रृंखला को व्यक्त किया गया है। सिद्धांत के अनुसार, यदि विभाग F विभाग Q से सम्पर्क स्थापित करना चाहता है तो प्रथम सीढ़ी पर पहले F विभाग से प्रत्येक विभागीय स्तर के द्वारा होते हुये A विभाग तक जाना होगा और तत्पश्चात इसी क्रम से ही दूसरी सीढ़ी पर Q विभाग तक नीचे उतरना होगा।



10) व्यवस्था (Order): व्यवस्था से आशय सामग्री तथा कर्मचारियों – दोनों की व्यवस्था से है। इस संबंध में फेयोल ने दो उपसिद्धांत बताये हैं:

- प्रत्येक वस्तु के लिये निश्चित स्थान व प्रत्येक वस्तु नियत स्थान पर होनी चाहिये ।
- प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक नियत स्थान एवं प्रत्येक व्यक्ति अपने नियत स्थान पर होना चाहिये ।

11) समता (Equity): इसका आशय यह है कि अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ न्याय व उदारता का व्यवहार होना चाहिये जिससे कि उनकी सदभावना व सहयोग बना रहे ।

12) कार्यकाल की स्थायित्वता (Stability of tenure of persons): किसी नये कर्मचारी द्वारा किसी नवीन काम को सीखने तथा कुशलतापूर्वक उसके निष्पादन में समय लगना स्वाभाविक है । अतः यदि उस अवधि के पूर्व ही उसे निकल दिया जाये अथवा काम सीखने पर समुचित समय न दिया जाये तो यह न्यायसंगत नहीं होगा । फेयोल ने इस बात पर बल दिया कि जहाँ तक हो सके कर्मचारियों के कार्यकाल में स्वामित्व होना चाहिये जिससे कि वे निश्चित होकर तत्परतापूर्वक कार्य कर सकें ।

13) पहलपन (Initiative): इसका आशय यह है सभी लोगों को स्वतंत्रता पूर्वक सोचने तथा योजना क्रियान्वित करने के का अधिकार होना चाहिये । प्रत्येक प्रबंधक को अपने अधीन काम करने वाले व्यक्तियों में पहल की भावना को प्रेरित करना चाहिये ।

14) समूह भावना का सिद्धांत (Esprit de Corps): फेयोल ने सहयोग एवं सहकारिता के साथ काम करने की भावना पर बल दिया है । इस भावना को विकसित करने के लिये उन्होंने दो सुझाव भी दिए हैं :

- आदेश की एकता के सिद्धांत का पालन कठोरता से होना चाहिये ।
- सन्देशवाहन की प्रणाली अत्यंत प्रभावशाली होनी चाहिये

इस सन्दर्भ में दूसरा नाम लूथर गुलिक का आता है । उन्होंने प्रशासन के कार्यों का सूत्र "POSDCORB (पोस्टकोर्ब)" बनाया । इसमें P-Planning (नियोजन), O-Organizing (संगठन), S-Staffing (नियुक्ति), D-Directing (निर्देशन), C- Coordinating (समन्वय), R-Recording (रिकार्ड करना) , B-Budgeting (बजट बनाना) से संबंधित है ।

- **नौकरशाही प्रबंध का युग (Bureaucratic Management Era):** नौकरशाही प्रबंध एक प्रतिष्ठित एवं परंपरागत विचारधारा रही है जिसका अस्तित्व आज भी अनेक प्रशासनिक व्यवस्थाओं में देखने को मिलता है । इस विचारधारा के सबसे अधिक व्यवस्थित अध्ययन का श्रेय जर्मनी के एक समाजशास्त्री मेक्स वेबर को जाता है । वेबर के अनुसार नौकरशाही का अर्थ होता है: नियुक्त किये गये अधिकारियों की एक प्रशासनिक संस्था । इस व्यवस्था में सत्ता और शक्ति पद में निहित होते हैं, किसी व्यक्ति में नहीं । नौकरशाही व्यवस्था अपनी विशेषताओं जैसे- पद सोपान, श्रम विभाजन, अवैयक्तिक सम्बन्ध, लिखित नियम, निश्चित कार्य विधि, कानूनी सत्ता एवं शक्ति आदि के कारण तकनीकी दृष्टि से उच्च मात्रा की विवेकशीलता तथा प्रभावशीलता प्राप्त करने की योग्यता रखती है।

1.5.2 नव परम्परावादी युग, 1935-1950 (Neo-Classical Era):

इस युग को संक्रमण का युग भी माना जाता है। व्यवहारवादी विज्ञान में हुये नये अनुसन्धानों एवं प्रयोगों ने परम्परावादी विचारधारा को त्रुटिपूर्ण साबित किया जिसके फलस्वरूप प्रशासन की नई विचारधारा का सूत्रपात हुआ। इसमें औपचारिक संगठन के स्थान पर मानवीय पहलूओं पर बल दिया जाने लगा। इस युग के प्रवर्तकों का योगदान निम्नांकित हैं:

- **जार्ज एल्टन मेयो:** उन्होंने अपने साथियों – प्रो एफ०जे०रोथलिसबर्जर तथा विलियम०जे०डिक्सन के साथ मिलकर वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के शिकागो स्थित हव्थोर्न संयंत्र में श्रमिकों पर 1924-1933 ई० के बीच कई प्रयोग किये। उन प्रयोगों के निष्कर्षों के आधार पर उन्होंने यह कहा कि किसी संगठन को एक सामाजिक प्रणाली के रूप में तथा इसके सदस्यों को चेतनायुक्त प्राणी के रूप में देखा जाना चाहिये। उन्होंने जिस विचारधारा को जन्म दिया उसे "मानवीय संबंध विचारधारा" के नाम से जाना जाता है जो आगे चलकर प्रशासन के विचारधारा के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ।
- **मेरी पार्कर फोलेट:** फोलेट ने संबंधों के मनोविज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने प्रबंध के कई महत्वपूर्ण विषयों जैसे नेतृत्व, रचनात्मक संघर्ष, आदेशों का मनोविज्ञान, सत्ता, नियंत्रण, समायोजन, सहभागिता, सहमति समझौता आदि पर अपने मूल्यवान विचार प्रकट किये। उन्होंने प्रबंध में "मेलजोल", "समूह चिंतन" तथा "नवीन प्रजातांत्रिक मूल्यों" को अपनाने पर जोर दिया था।
- **ओलिवर शेल्डन:** शेल्डन ने भी उपक्रम को मनुष्यों तथा मानवीयता का एक जटिल आकार माना था। उनका आदर्श था कि "व्यक्ति पहले है।"
- **चेस्टर बर्नार्ड:** बर्नार्ड ने प्रबंधकीय प्रक्रिया का मानवीय एवं सामाजिक विश्लेषण किया था। उन्हें सामाजिक प्रणाली विचारधारा का जन्मदाता माना जाता है।
1940 के बाद मानवीय सम्बन्ध की विचारधारा में एक नया मोड़ आ गया। कई विद्वान यह मानने लगे कि मनुष्य केवल सामाजिक संबंधों से प्रेरित होकर ही कार्य नहीं करता है वरन् वह अपनी मानसिक, भावात्मक तथा आत्मविकास की भावनाओं से प्रेरित होकर कार्य करता है। इस तरह प्रशासन का विकास व्यवहारवादी विज्ञान के रूप में होने लगा जिसमें विभिन्न पहलूओं जैसे- सामाजिक अंतर्व्यवहार, अभिप्रेरणा, सत्ता के प्रारूप, संप्रेषण, नेतृत्व, कार्य रचना, वैयक्तिक आवश्यकताओं आदि पर बल दिया गया। इस दृष्टिकोण को समृद्ध बनाने में जिन विचारकों का योगदान है उनका उल्लेख निम्नांकित है:
- **कर्ट लेविन:** उन्होंने व्यक्तित्व तथा व्यवहार की अवधारणा के सम्बन्ध में अपने विचार दिये। उनका परिवर्तन मॉडल, शक्ति क्षेत्र के विश्लेषण तथा अभिलाषा का स्तर विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

- **रैंसिस लिंकर्ट:** लिंकर्ट के अनुसन्धान का केंद्र मानव रहा है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकला कि कार्य-केन्द्रित पर्यवेक्षण के स्थान पर कर्मचारी-केन्द्रित-पर्यवेक्षण अधिक महत्वपूर्ण है।
- **अब्राहम मास्लो:** मास्लो ने मानव अभिप्रेरणा की विचारधारा को स्पष्ट करते हुये मानवीय आवश्यकताओं को पांच श्रेणियों – शारीरिक, सुरक्षात्मक, सामाजिक, स्वाभिमान तथा आत्म विकास में विभक्त किया है। उसका यह मत है कि व्यक्ति एक निश्चित क्रम में ही अपनी आवश्यकताओं कि पूर्ति के लिये प्रयासरत रहता है।
- **हर्ज़बर्ग:** हर्ज़बर्ग ने अभिप्रेरणा की द्वि-घटक आरोग्य विचारधारा का प्रतिपादन किया। उनका कहना है की मनुष्य की आवश्यकताओं के दो समूह हैं- (1) स्वास्थ्य तत्त्व: ये तत्त्व कार्य के वातावरण का निर्माण करते हैं। ये अभिप्रेरणा के लिये आवश्यक होते हैं किन्तु वे स्वयं अभिप्रेरणा नहीं होते हैं। अभिप्रेरक तत्त्व: इसके अंतर्गत वे तत्त्व आते हैं जो संगठन के सदस्यों के अभिप्रेरणा स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक होते हैं।

1.5.3 आधुनिक विचारधारा का युग-1950 से अब तक (Modern Thought Era- Since 1950 to till now):

1950 के बाद प्रशासन के क्षेत्र में विभिन्न विचारधाराओं के एकीकरण एवं संयोजन का दौर प्रारंभ हुआ तथा कई नवीन प्रवृत्तियों का भी विकास हुआ। इन प्रवृत्तियों की चर्चा निम्नलिखित है:

- **प्रणाली विचारधारा (System Theory):** यह विचारधारा संगठन को पृथक-पृथक विभागों, कार्यों एवं साधनों के संकलन के रूप में नहीं वरन एकीकृत सम्पूर्णता, संगठित इकाई या समन्वित पद्धति के रूप में मानती है।
- **संभाव्यता विचारधारा (Contingency Theory):** यह विचारधारा यह मत है कि प्रशासन की कोई एक श्रेष्ठ विधि नहीं होती है, वरन् सब कुछ परिस्थिति पर निर्भर करता है। अतः किसी प्रशासक को वही मार्ग अपनाना होता है जो समय की मांग होती है।
- **गणितीय विचारधारा (Mathematical Theory):** यह विचारधारा संपूर्ण प्रशासन को एक गणितीय मॉडल मानती है। इसकी यह मान्यता है की संपूर्ण प्रशासन एक तार्किक प्रक्रिया है जिसे गणितीय संकेतों, सूत्रों, चिन्हों, समीकरणों अथवा काल्पनिक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।
- **7-एस मैककिन्सी मॉडल (The McKinsey 7-S Framework):** इस मॉडल को थोमस पीटर्स, रोबर्ट वाटरमैन तथा रिचर्ड पास्कल आदि के साथ मिलकर मैककिन्सी ने यह मॉडल तैयार किया है। उनके अनुसार संगठनात्मक प्रशासन सात घटकों – व्यूहरचना, संरचना, प्रणालियाँ, स्टाफ, शैली, कौशल तथा अधिलक्ष्यों का जोड़ है। इसमें अन्तःनिर्भरता का संबंध होता है। अतः किसी एक घटक में परिवर्तन होने पर सभी में संयोजन आवश्यक हो जाता है।

- **प्रबंध सूचना पद्धति (Management Information System):** कंप्यूटर टेक्नोलॉजी के विकास के साथ ही प्रबंध में सूचना प्रणाली का महत्व बढ़ गया है। सूचना प्रबंध एक महत्वपूर्ण संसाधन बन गया है। यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें समकों का एकत्रीकरण, संग्रहण एवं प्रविधियन किया जाता है तथा सूचना के रूप में नियोजन, नियंत्रण एवं निर्णयन के लिये प्रशासकों को उपलब्ध करवाया जाता है। दूसरे शब्दों में प्रबंध सूचना पद्धति मानवीय एवं कम्प्यूटर आधारित पूंजी-संसाधनों का सम्मिश्रण है।
- **ज़ेड विचारधारा (Z Theory):** यह विचारधारा जापानी प्रबंधदर्शन एवं जापान में प्रयुक्त तकनीकों का दूसरा नाम है। 1981 में विलियम आवूची ने अमेरिकी संगठनों में जापानी दर्शन अपनाये जाने का सुझाव दिया था। यह विचारधारा मानवीय सम्बन्ध के सिद्धांतों एवं वैज्ञानिक पर्वध के सिद्धांतों का योग है।

उपर्युक्त विवेचनों से यह स्पष्ट है कि आज भी प्रशासन के क्षेत्र में विचारधाराओं द्रुत गति से परिवर्तन हो रहे हैं। इसी वजह से प्रशासन के सम्बन्ध में कोई एकीकृत विचारधारा बन नहीं पायी है। वस्तुतः शैक्षिक प्रशासन ज्ञान की विविधता, विचारकों के विभिन्न परिवेश तथा उसकी विकासोन्मुख प्रकृति के कारण ही ऐसा हुआ है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. एफ०डब्लू०टेलर ने को का जन्मदाता माना जाता है।
2. हेनरी फेयोल ने प्रशासन सम्बन्धीसूत्रों का प्रतिपादन किया है।
3. प्रशासन के नौकरशाही सिद्धांत के प्रवर्तक..... हैं।
4. हव्थोर्न संयंत्र के प्रयोगों ने विचारधारा को जन्म दिया है।
5. अब्राहम मास्लो मानव अभिप्रेरणा को भागों में विभक्त किया है।
6. प्रशासन की..... विचारधारा के अनुसार सब कुछ परिस्थिति पर निर्भर करता है।
7. विचारधारा जापानी प्रबंधदर्शन एवं जापान में प्रयुक्त तकनीकों से सम्बंधित है।
8. संगठन की विचारधारा उसे एक पूर्ण इकाई के स्थापित करता है।
9. लूथर गुलिक ने प्रशासन के सूत्र का प्रतिपादन किया।
- 10.....विचारधारा किसी प्रशासनिक संगठन को एक तर्क पूर्ण प्रक्रिया मानती है।
11. प्रबंध सूचना पद्धति में को सूचनाओं के रूप में उपलब्ध करवाया जाता है।
12. 7-एस मैककिन्सी मॉडल के अनुसार संगठन घटकों का जोड़ होता है।

1.6 सारांश (Summary)

प्रबंध संगठनात्मक जीवन का अभिन्न अंग है। इसके बिना एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में सामूहिक प्रयासों को यथोचित नियोजित, निर्देशित, समन्वित एवं नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। किसी शैक्षणिक संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये उसके विभिन्न तत्वों के बीच समन्वय आवश्यक है। शैक्षिक प्रबंध वह प्रक्रिया है जो शैक्षणिक वातावरण में सामूहिक प्रयासों के कुशलतम उपयोग के लिये भौतिक, मानव, वित्तीय एवं सैद्धांतिक – इन चारों तत्वों का प्रयोग करता है। दूसरी ओर, शैक्षिक प्रशासन शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य प्रशासन के नियमों, सिद्धांतों, विधियों, प्रवृत्तियों आदि के प्रयोग से संबंधित है। इसका उद्देश्य शैक्षिक वातावरण में सुधार लाना है ताकि छात्र, शिक्षक, अभिभावक तथा अन्य कार्यकर्ता लाभान्वित हो सकें। शैक्षिक प्रशासन के विकास को सामान्य प्रशासन के विकास से जोड़ा गया है। सामान्य प्रशासन के विकास को तीन युगों में विभक्त किया गया है: परम्परावादी युग, नव परम्परावादी युग और आधुनिक विचारधारा का युग। परम्परावादी युग के तीन महत्वपूर्ण भाग हैं: वैज्ञानिक प्रबंध युग, प्रशासनिक विचारधारा का युग एवं नौकरशाही व्यवस्था का युग। नव परम्परावादी युग में मानव सम्बन्ध सिद्धांत एवं व्यवहारवादी सिद्धांत: इन दोनों ने जड़ें जमा लीं। 1950 से अब तक का समय आधुनिक विचारधारा का युग कहा जाता है। समय के साथ साथ शैक्षिक प्रशासन में अनेक नई विचारधाराओं को जोड़ने की आवश्यकता है जिससे कि यह एक स्वतंत्र विषय का रूप ले सके।

1.7 शब्दावली

1. विकेंद्रीकरण: अधीनस्थ कर्मचारियों को अधिकार सत्ता का व्यवस्थित हस्तांतरण।
2. वैज्ञानिक प्रबंध: टेलर महोदय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत।
3. सोपान शृंखला: सर्वोच्च पदाधिकारी से लेकर निम्नतम पदाधिकारी के बीच संपर्क की व्यवस्था के क्रम।
4. नौकरशाही: वह व्यवस्था जो जिसमें वैधानिक सत्ता पद से जुड़ी होती है, किसी व्यक्ति से नहीं।
5. POSDCORB: लूथर गुलिक द्वारा प्रतिपादित प्रशासनिक कार्यों का सूत्र।
6. प्रबंध सूचना पद्धति: समकों का एकत्रीकरण संग्रहण प्रविधियन तथा सूचनाओं के रूप में उनकी उपलब्धता।

1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. संसाधनों 2. नियंत्रण 3. मानवीय, सैद्धांतिक

1. अधीनस्थ 2. अधिकार एवं दायित्व

1. वैज्ञानिक प्रबंध 2. चौदह 3. मेक्स वेबर 4. मानव सम्बन्ध 5. पांच 6. संभाव्यता 7. जेड 8. प्रणाली 9. POSDCORB 10. गणितीय 11. समकों 12. सात।

1.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Agarwal, N.P. & R. Tailor. *Principles & Practice of Management*. RBSA Publishers. Jaipur, 2008.
2. Jain, N.C & Saakshi. *Management Theory & Practice*. AITBS Publishers, New Delhi, 2008.
3. Kompal & Shivani. *Educational Administration: Motivating Academics*. Y.K Publishers, Agra.
4. Parthasarthy, P. *Principles of Management*. Vrinda Publications (P) Limited, New Delhi, 2005.
5. Shah, P.K & B.D Tated. *Prabandh ke Siddhant evam Vyvhar*. National Publishing House, Jaipur, 2010.
6. Sivalingm, T. *Fundamentals of Management*. Vrinda Publications (P) Limited, New Delhi, 2005.
7. Sudha, G.S. *Principles & Practice of Management*. Malik & Company, Jaipur, 2011.

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैक्षिक प्रशासन से आप क्या समझते हैं ? इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करें ।
2. केंद्रीकरण एवं विकेंद्रीकरण में अंतर बतायें ।
3. प्रशासन के विकास के परम्परावादी युग से आप क्या समझते हैं ? इसके मुख्य विचारधाराओं पर प्रकाश डालें ।
5. प्रशासनिक विचारधारा के युग में हेनरी फेयोल के योगदानों की चर्चा करें ।
6. प्रशासन के विकास के नव परम्परावादी युग के मुख्य बातों को लिखें ।
7. प्रशासन के आधुनिक विचारधारा के युग का वर्णन करें ।

इकाई 2 : वैज्ञानिक प्रबंध का सिद्धांत , प्रशासनिक विचारधारा एवं नौकरशाही का सिद्धांत Scientific Management Theory, Administrative Theory & Theory of Bureaucracy)

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 वैज्ञानिक प्रबंध
 - 2.3.1 वैज्ञानिक प्रबंध की परिभाषायें
 - 2.3.2 वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांत
 - 2.3.3 वैज्ञानिक प्रबंध की तकनीकें
 - 2.3.4 वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचनायें
- 2.4 प्रशासनिक विचारधारा
 - 2.4.1 हेनरी फेयोल का योगदान
 - 2.4.2 लूथर गुलिक का योगदान
 - 2.4.3 प्रशासनिक विचारधारा की आलोचनायें
- 2.5 नौकरशाही
 - 2.5.1 नौकरशाही की परिभाषायें
 - 2.5.2 नौकरशाही की विशेषतायें
 - 2.5.3 नौकरशाही की आलोचनायें
- 2.6 सारांश
- 2.7 शब्दावली
- 2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.9 सन्दर्भ सूची
- 2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

बीसवीं सदी से लेकर आज तक के अवधि को "आधुनिक प्रशासन युग" के नाम से जाना जाता है। पिछले एक सदी में अनेक विचारकों ने प्रशासन के अध्ययन को समुन्नत बनाने का प्रयास किया। परम्परागत विचारकों में एफ डब्लू टेलर, हेनरी फेयोल तथा मेक्स वेबर के नाम अग्रगण्य हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप इन्हीं तीनों विचारकों के सिद्धान्तों को विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- वैज्ञानिक प्रबंध को परिभाषित कर सकेंगे।
- टेलर का वैज्ञानिक प्रबंध के तकनीकों को बता सकेंगे।
- टेलर का वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचनात्मक समीक्षा कर सकेंगे।
- प्रशासनिक विचारधारा में फेयोल एवं लूथर गुलिक के योगदानों का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रशासनिक विचारधारा की आलोचनाओं को बता सकेंगे।
- नौकरशाही को परिभाषित कर सकेंगे।
- नौकरशाही की विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- नौकरशाही व्यवस्था की आलोचनाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

2.3 वैज्ञानिक प्रबंध (Scientific Management) :

20 वीं सदी के आरम्भ में प्रशासन ने एक नया रूप ग्रहण लिया जिसे वैज्ञानिक प्रबंध कहा जाता है। इसके जन्म के पीछे औद्योगिक क्रांति की तत्कालीन परिस्थितियां उत्तरदायी थीं। 19 सदी के अंतिम दशक में कम लागत पर क्लेफ्ट किस्म का माल बनाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी। फलतः उद्योग में प्रत्येक कार्य के लिये विज्ञान का विकास किये जाने लगा। वैज्ञानिक प्रबंध की आधारभूत मान्यता यह है कि "प्रत्येक कार्य का एक विज्ञान है (There is a science of every work)". वैज्ञानिक प्रबंध की अवधारणा को सार्वभौमिक मान्यता दिलाने में फ्रेडरिक टेलर (1856-1915) का नाम अग्रगण्य है। टेलर का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका के एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। टेलर ने अपना व्यवसायिक जीवन में अमेरिकन मिडवेल स्टील कंपनी में श्रमिक के रूप में शुरू किया परन्तु आपनी मेहनत और लगन के कारण अल्पावधि में ही उसी कंपनी के मुख्य अभियंता बन गये। इसी दौरान संध्यकालीन स्कूल में अध्ययन करते हुये उन्होंने मास्टर ऑफ इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने यूरोप के अनेक देशों का भ्रमण किया तथा अनेक पदों पर कार्य करते हुये श्रमिकों की प्रवृत्तियों व समस्याओं को जानने का अवसर प्राप्त किया। प्रबंध के सम्बन्ध में उनके विचार सबसे पहले "Piece rate system" शीर्षक लेख के रूप में 1895 में प्रकाशित हुये। 1911-1912 में उन्होंने "Principles of scientific management" शीर्षक निबंध प्रकाशित किया जिसमें वैज्ञानिक प्रबंध शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किया गया। टेलर ने अपने अध्ययनों एवं परीक्षणों के आधार पर यह बताया कि श्रमिक अपने कार्य में रूचि नहीं लेते हैं तथा जी चुराते हैं। उनमें यह धारणा बन गयी थी कि

आधिक उत्पादन करने पर कार्य में कमी हो जायेगी और उन्हें कार्य से हटाया जा सकता है। अतः अरुचिपूर्वक एवं धीरे धीरे कार्य करने का ढंग बन गया था (Soldiering was a system)। उन्होंने यह भी पता लगाया कि नियोक्ताओं एवं श्रमिकों की अज्ञानता के कारण ही उत्पादकता में वृद्धि नहीं हो पा रही है। उन्होंने यह सुझाव दिया कि वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग करके बिना अतिरिक्त मानवीय उर्जा एवं प्रयासों के उत्पादकता बढ़ायी जा सकती है ताकि श्रमिकों को उच्च वेतन एवं नियोक्ताओं को उच्च लाभ मिल सके।

2.3.1 वैज्ञानिक प्रबंध की परिभाषायें

पीटर ड्रकर: वैज्ञानिक प्रबंध का सारभूत तत्व कार्य के व्यवस्थित अध्ययन, कार्य का इसके तत्वों में विश्लेषण तथा श्रमिक के कार्य के प्रत्येक तत्व के निष्पादन में व्यवस्थित सुधार करने में निहित है।

टेलर: वैज्ञानिक प्रबंध सही रूप से यह जानने की कला है कि आप लोगों से क्या करवाना चाहते हैं तथा यह देखना कि वे उसे सर्वोत्तम ढंग तथा अधिकतम मितव्ययिता पूर्वक करते हैं।

जी एस सुधा: वैज्ञानिक प्रबंध एक ऐसी प्रबंधकीय विचार धारा है जो रुढ़िवादी, परंपरागत एवं अनुमानित धारणाओं के स्थान पर तथ्यों, तर्कों, प्रयोगों एवं विश्लेषण पर आधारित सिद्धांतों को स्वीकार करती है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित सुव्यवस्थित प्रबंध है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से वैज्ञानिक प्रबंध के सम्बन्ध में निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है :

- यह एक विचारधारा होने के साथ साथ तकनीकों एवं सिद्धांतों का समूह है।
- यह विज्ञान, तर्क एवं विश्लेषण पर आधारित है।
- यह किसी संगठन में उत्पादकता बढ़ाने पर बल देता है।
- यह मितव्ययिता एवं सर्वोत्तम तरीके की वकालत करता है।
- यह श्रमिक को एक आर्थिक शक्ति के रूप में देखता है तथा वैज्ञानिक तरीके से उसकी कार्य क्षमता में सुधार लाने के पक्ष में है।

2.3.2 वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांत (Principles of Scientific Management):

1) विज्ञान न की अनुभव या अनुमान (Science not rule of thumb): टेलर का यह मत है कि प्रत्येक कार्य के लिये वैज्ञानिक विधि का विकास किया जाना चाहिए। कार्य निष्पादन की परंपरागत विधियों – "अंगूठे के नियम", अनुमान, परीक्षण एवं भूल विधि, अटकलबाजी का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। अंगूठे के नियम पर आधारित ज्ञान का अर्थ बताते हुये टेलर लिखते हैं कि "यह श्रमिकों के मस्तिष्क, हाथों व शारीर तथा उनके कार्य कौशल, दक्षता व चतुराई पर आधारित होता है तथा जो अभिलिखित नहीं होता है।" विज्ञान के विकास

के लिये सम्बन्धित सूचनायें एकत्रित की जाती हैं, उनका वर्गीकरण और सारणीयन किया जाता है तथा उसका विश्लेषण करके सामान्य नियमों व सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है।

II) संघर्ष के स्थान पर मैत्री (Harmony not Discord): टेलर का यह मत है कि किसी भी संगठन में नियोक्ता और श्रमिक दोनों ही महत्वपूर्ण होते हैं। दोनों के समन्वित प्रयासों से ही संगठन का संचालन हो सकता है। अतः उन दोनों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध एवं हित सामंजस्य होना चाहिए। संघर्ष और असंगति से संगठन को क्षति पहुँचती है।

III) सहकारिता न कि व्यक्तिवाद (Cooperation not individualism): टेलर का यह मत है कि किसी भी संगठन में नियोक्ता एवं उसके श्रमिक/सदस्य परस्पर सहयोगी होते हैं। अतः उन्हें एक दूसरे के हितों, लक्ष्यों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर कार्य करना चाहिये। उनके प्रयास पृथक व एकाकी न होकर सहकारिता पर आधारित होने चाहिये। उन्हें एक दूसरे को अपना पूरक मानना चाहिये।

IV) सीमित के स्थान अधिकतम उत्पादन (Maximum output in place of restricted output): वैज्ञानिक प्रबंध किसी संगठन के प्रबंधक एवं उसके सदस्यों की आर्थिक समृद्धि पर जोर देता है। अतः टेलर ने साधनों की पूर्ण क्षमता का उपयोग करते हुये तथा सदस्यों की कार्यक्षमता में वृद्धि करके उत्पादकता बढ़ने पर जोर दिया था। उन्होंने स्पष्ट किया कि उत्पादकता बढ़ा कर एक ओर जहाँ संसाधनों का उपयोग, लागतों में कमी एवं लाभों में वृद्धि की जा सकती है वहीं दूसरी ओर सदस्यों को ऊँचा वेतन देना संभव हो पाता है।

V) प्रत्येक व्यक्ति का चरम सीमा तक विकास (Development of each man to the fullest extent): टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंध में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी चरम सीमा तक विकसित होने का अवसर प्रदान किया जाता है। व्यक्ति को अपने विकास के लिये उचित प्रशिक्षण दिया जाता है तथा रूचि के अनुसार कार्य सौंपा जाता है। उनके लिये प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति लागू की जाती है तथा पदोन्नति का अवसर भी प्रदान किया जाता है।

VI) कार्य एवं दायित्वों का विभाजन (Division of work and responsibility): टेलर ने कार्य के नियोजन एवं क्रियान्वयन पहलू को पृथक-पृथक करने पर जोर दिया था। उनके अनुसार किसी संगठन में नियोजन का दायित्व उसके प्रबंधकों पर होना चाहिये जबकि क्रियान्वयन का कार्य उसके सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिये। इस प्रकार दोनों वर्गों की क्षमता का सही सही उपयोग हो सकता है।

VII) मानसिक क्रांति (Mental revolution): मानसिक क्रांति वैज्ञानिक प्रबंध का मूल दर्शन है। इसका तात्पर्य यह है कि संगठन के प्रबंधकों एवं उसके सदस्यों के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाना चाहिये। वास्तव में ये दोनों ही संगठन के महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ होते हैं। उन्हें नवीन ढंग से सोच कर एक दूसरे के प्रति निश्चल एवं निष्कपट बनना चाहिये।

2.3.3 वैज्ञानिक प्रबंध की तकनीकें (Techniques of Scientific Management):

टेलर तथा उसके अनुयायियों ने वैज्ञानिक प्रबंध की कई नई तकनीकों का विकास किया था। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

I) क्रियात्मक फोरमैनशिप (Functional foremanship): टेलर ने क्रियात्मक संगठन को वैज्ञानिक प्रबंध का आधार माना है। उन्होंने इस प्रारूप को क्रियात्मक फोरमैनशिप का नाम दिया है। यह प्रारूप विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है। इसमें किसी संगठन में कार्यात्मक विशेषज्ञों का सदस्यों से प्रत्यक्ष संपर्क होता है तथा प्रत्येक सदस्य को कई विशेषज्ञों से आदेश एवं निर्देश प्राप्त करने होते हैं। इस प्रारूप में प्रत्येक कार्य को छोटे-छोटे भागों में बांटकर प्रत्येक कार्य के लिये एक विशिष्ट फोरमैन नियुक्त किया जाता है जो कि उस क्रिया में विशेषज्ञ होता है।

II) प्रमापीकरण (Standardisation): टेलर ने प्रबंधकों को यह सुझाव दिया कि यंत्रों, उपकरणों, सामग्री, कार्यविधियों, कार्यदशाओं, संसाधनों आदि सभी के प्रमाप निर्धारित कर दिए जाने चाहिये। ये प्रमाप वैज्ञानिक अनुसंधानों, प्रयोगों व अवलोकनों के आधार पर निश्चित किये जाने चाहिये। प्रमापीकरण के द्वारा अनावश्यक अपव्यय को रोका जा सकता है तथा उत्पादन के लागत में कमी और उत्पाद की किस्म में सुधार किया जा सकता है।

III) प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली (Incentive wage system): टेलर ने यह सुझाव दिया कि श्रमिकों को उनकी क्षमता एवं प्रयासों के आधार पर पारिश्रमिक दिया जाना चाहिये। उन्होंने श्रमिकों को अधिक कार्य करने की प्रेरणा देने के लिये विभेदात्मक मजदूरी प्रणाली का प्रतिपादन किया। इस पद्धति के अनुसार के निर्धारित समय में प्रमापित कार्य पूरा करने वाले सदस्यों को प्रति इकाई ऊँची दर से मजदूरी दी जाती है तथा जो सदस्य निर्धारित समय में प्रमापित कार्य को पूरा नहीं कर पाते नहीं कर हैं, उन्हें प्रति इकाई नीची दर से मजदूरी दी जाती है। यह प्रणाली योग्य सदस्यों को अधिक मजदूरी प्रदान करती है तथा अकुशल सदस्यों को कुशल बनने की प्रेरणा देती है।

IV) श्रमिकों का वैज्ञानिक चुनाव एवं प्रशिक्षण (Scientific selection and training of workers): टेलर का यह मत है कि कार्य के अनुसार ही सदस्यों का चयन किया जाना चाहिये ताकि सही कार्य पर सही व्यक्ति की नियुक्ति की जा सके। सदस्यों के वैज्ञानिक चयन के लिये मनोवैज्ञानिक एवं व्यावसायिक परीक्षण रखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त कार्य के प्रति उनकी रुचि, योग्यता, प्रवृत्ति, व्यक्तित्व आदि की भी जाँच की जा सकती है। वैज्ञानिक विधि से चयनित सदस्यों की कार्यक्षमता अधिक होने के साथ साथ उसके कार्य का पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता भी नहीं होगी। इतना ही नहीं अच्छे परिणामों की प्राप्ति के लिये सदस्यों को कार्य पर नियुक्त करने से पहले आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

V) कार्य का वैज्ञानिक वितरण (Scientific allocation of work): टेलर का यह मत था कि जब तक कार्य का उचित वितरण नहीं किया जायेगा तब तक उस संगठन की क्षमता में वृद्धि नहीं की जा सकती है। उन्होंने

सदस्यों की रूचि और योग्यता को ध्यान में रख कर सही व्यक्ति को सही कार्य देने की वकालत किया। कार्य का वैज्ञानिक वितरण नहीं होने से एक ओर जहाँ लक्ष्य प्राप्ति में बाधा पहुँचती है वहीं दूसरी ओर सदस्यों में कार्य के प्रति उदासीनता, अरुचि, अनुपस्थिति व अन्य समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त सदस्यों की कार्य कुशलता पर प्रभाव पड़ने से उसके पारिश्रमिक में कटौती हो जाती है। अतः टेलर ने कार्यों के वैज्ञानिक वितरण पर बल दिया।

VI) यन्त्र व सामग्री का वैज्ञानिक चयन (Scientific allocation tools and materials): टेलर का यह मत था की जब तक उपयुक्त किस्म के यंत्र या सामग्री उपलब्ध न हो सकें तब तक कोई भी सदस्य दक्षता पूर्वक कार्य नहीं कर सकता है। अतः प्रबंधकों को चाहिये कि वे प्रयोग में लायी जाने वाली सामग्री के पहले से ही प्रमाण निर्धारित कर लें तथा उसी के अनुसार सामग्री का क्रय करें।

VII) नियंत्रण की सामूहिक विचारधारा (Collective concept of control): टेलर ने प्रबंधकों नियंत्रण की सामूहिक विचारधारा प्रदान की। इसके अंतर्गत किसी संगत में यांत्रिक नियंत्रण पर जोर ना देकर संवेदनशील एवं बौद्धिक नियंत्रण पर जोर दिया जाता है। इस पद्धति में सदस्यों एवं प्रबंधकों दोनों आवश्यकताओं की पर ध्यान दिया जाता है।

VIII) कुशल लागत लेखा प्रणाली (Efficient costing system): कुशल लागत लेखा प्रणाली वैज्ञानिक प्रबंध का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके द्वारा किसी कार्य को करने में जो लागत आता है उससे सम्बन्धित लागतों का अनुमान लगाया जाना चाहिये। ऐसा करने से सामग्री, समय, मशीन आदि के अपव्ययों को रोका जा सकता है।

2.3.4 वैज्ञानिक प्रबंध की आलोचनार्यें (Criticisms of Scientific Management):

टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांतों ने प्रशासन के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी तथा औद्योगिक समस्याओं के निराकरण में अमूल्य योगदान दिया है। फिर भी टेलर के सिद्धांत आलोचनाओं से अछूते नहीं रहे। वैज्ञानिक प्रबंध की निम्नलिखित बिंदुओं पर आलोचना की गयीं हैं –

I) यह सिर्फ कारखाना स्तर पर उत्पादन पर बल देता है तथा किसी संगठन के प्रशासकीय

ढांचा के सम्बन्ध में कोई मंतव्य नहीं देता है।

II) यह मानवीय पक्ष की अवहेलना करता है इसके अनुसार श्रमिक/सदस्य सिर्फ एक मशीन है जिनका उद्देश्य उत्पादन करना है।

III) इसमें मानवीय अभिप्रेरणाओं की व्याख्या सिर्फ आर्थिक लाभ के सन्दर्भ में की गयी है। यह सिद्धांत श्रमिकों/सदस्यों के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं की अवहेलना करता है।

IV) यह प्रशासनिक तानाशाही को जन्म देता है क्योंकि समस्त नियोजन का कार्य प्रशासकों/ प्रबंधकों द्वारा ही किया जायेगा तथा श्रमिक/कर्मचारी सिर्फ उनके आदेशों के अनुसार कार्य करेंगे।

V) कार्य विधियों, कार्य माप तथा मजदूरी दर का वैज्ञानिक ढंग से सही- सही मापन नहीं किया जा सकता है।

VI) टेलर की मानसिक क्रांति के सिद्धांत के अनुसार सभी औद्योगिक समस्याओं का निपटारा नियोक्ता तथा श्रमिकों के बीच आपस में विचार विमर्श द्वारा होगा। ऐसे में श्रम संगठनों की शक्ति कम होती जायेगी।

VII) इस सिद्धांत की आलोचना प्रबंधकों द्वारा भी की गयी क्योंकि इसे लागू किये जाने से उनका दायित्व और काम – ये दोनों ही बढ़ गये। साथ ही वैज्ञानिक प्रणाली अपनाने से उनकी निर्णय प्रक्रिया पर अंकुश लग गया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. वैज्ञानिक प्रबंध शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1919 में किया गया।
2. वैज्ञानिक प्रबंध का सार तत्त्व विज्ञान एवं तर्क है।
3. टेलर के अनुसार किसी संगठन के सदस्यों को प्रशिक्षित करना अनिवार्य नहीं है।
4. टेलर ने किसी संगठन के सदस्यों के लिये प्रेरणात्मक मजदूरी की वकालत की।
5. क्रियात्मक फोरमैनशिप विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है।
6. टेलर वाद कार्य निष्पादन में अंगूठे के नियम को अपनाने पर जोर देता है।

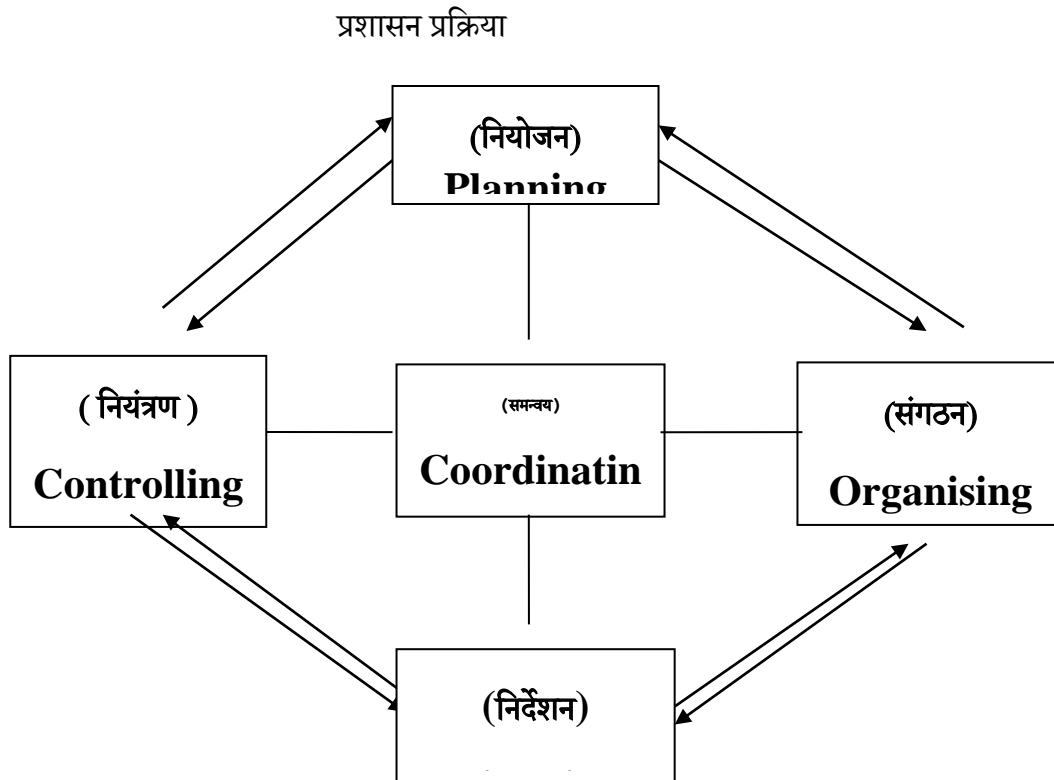
2.4 प्रशासनिक विचारधारा (Administrative theory)

वैज्ञानिक प्रबंध की विचारधारा का प्रारंभ अमेरिका से हुआ था। किन्तु ठीक उसी समय यूरोप में भी एक पूरक सम्पूर्ण विचारधारा प्रचलित हो रही थी जिसे प्रशासकीय विचारधारा के नाम से जाना जाता है। यह विचारधारा अनेक विद्वानों के विचारों का परिणाम रही है। इसमें हेनरी फेयोल, लूथर गुलिक तथा ऑलिवर शैल्डन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

2.4.1 हेनरी फेयोल का योगदान (Contributions of Henry Fayol)

हेनरी फेयोल एक फ्रांसिसी (1841-1925) अभियंता थे जिन्हें "आधुनिक प्रबंध का जन्मदाता" माना जाता है। उन्होंने प्रशासन से सम्बंधित विचार आपनी लोकप्रिय पुस्तक "General and Industrial management" में 1916 प्रकाशित किया। उनके प्रशासन से सम्बंधित सिद्धांत को व्यापक स्वीकृति मिली और विश्व के सभी राष्ट्रों के प्रशासकों एवं संगठन के मालिकों ने अपनाया। इकाई 1 में आपने पढ़ा कि हेनरी फेयोल ने प्रशासन के 14 सिद्धांतों का प्रतिपादन करके प्रशासकों की कार्यक्षमता बढ़ाने में सक्रिय योगदान दिया। उनका यह मत था कि प्रशासन कुछ निश्चित कार्यों के द्वारा संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने से सम्बंधित

हायह एक प्रक्रिया है जो कि पृथक पृथक क्रियाओं से मिलकर नहीं बनती है जबकि यह अंतर्संबंधित कार्यों का एक समूह है जिसे एक विशिष्ट क्रम में निष्पादित किया जा सकता है। प्रशासन प्रक्रिया को नीचे दिये गये चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।



हेनरी फेयोल ने प्रशासन प्रक्रिया के पांच महत्वपूर्ण क्रियायें बताये हैं जिनकी चर्चा निम्नांकित है :

I) **नियोजन (Planning):** नियोजन के अंतर्गत यह निर्धारित किया जाता है की क्या किया जाना है, कैसे जब और कहाँ करना है, कौन करेगा तथा परिणामों का मूल्यांकन कैसे किया जायेगा। नियोजन के के लिये निम्न कदम उठाये जाते हैं:

- लक्ष्य /उद्देश्य निर्धारित करना
- नियोजन की आधारभूत मान्यताओं को निर्धारित करना

- वैकल्पिक उपायों की खोज तथा परीक्षण करना
- किसी क्षेत्र विकल्प का चयन करना
- आवश्यक सहायक योजनाओं का निर्माण करना
- योजना का क्रियान्वयन एवं अनुवर्तन करना

II) संगठन (Organizing): नियोजन जिन उद्देश्यों व कार्यक्रमों को निर्धारित करता है, उनके क्रियान्वयन के लिये संगठन एक साधन या उपकरण है। इसके अंतर्गत प्रशासक विभिन्न साधनों को एकत्रित करता है तथा उनमें कार्यकारी संबंध स्थापित करने का कार्य करता है। संगठन विभिन्न कार्यों का समूहीकरण करने, कार्यों का वितरण करने तथा संबंधित व्यक्तियों को अधिकार एवं दायित्व सौंपने की प्रक्रिया है। किसी संस्था के संगठन के लिये प्रशासक को निम्न कार्यों को करता है: क्रियाओं का निर्धारण करना

- क्रियाओं का समूहीकरण करना
- क्रिया – समूहों को विभागों को सौंपना
- क्रियाओं के लिये अधिकारों व दायित्वों का निर्धारण करना
- आपसी कार्य-संबंधों का निर्धारण करना

III) निर्देशन (Directing): निर्देशन वह कार्य है जिसके अंतर्गत संस्था के सदस्यों का पर्यवेक्षण, मार्गदर्शन एवं अभिप्रेरण किया जाता है ताकि संस्था के उद्देश्यों को अधिकतम कुशलता के साथ प्राप्त किया जा सके। टेरी के अनुसार, निर्देशन में, "किसी कार्य को गति देना व्यवहार में परिणित करना तथा गति समूह को प्रेरणात्मक शक्ति प्रदान करना शामिल है।" वास्तव में, निर्देशन का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है निम्न कार्य शामिल होते हैं:

- **पर्यवेक्षण (Supervision):** यह कार्य प्रशासक द्वारा आपने अधीनस्थों के कार्यों का निरीक्षण करने से संबंधित है। इसमें वह आपने अधीनस्थों को कार्य करने के ढंग, प्रक्रिया और नियमों की जानकारी देते हैं।
- **सम्प्रेषण (Communicating):** इसके अंतर्गत प्रशासक आपने अधीनस्थों को कार्य के सम्बन्ध में आदेश- निर्देश प्रदान करते हैं, विभिन्न प्रकार की सूचनायें प्रेषित करते हैं तथा उनकी शिकायतों व सुझावों को सुनते हैं।
- **अभिप्रेरण (Motivating):** इसके अंतर्गत प्रशासक अपनी संस्था के सदस्यों में कार्य भावना तथा संस्था के प्रति अपनत्व की भावना का करते हैं।
- **नेतृत्व (Leading):** यह प्रशासक के व्यवहार का वह गुण है जिसके द्वारा वह संस्था के सदस्यों को एक सूत्र में बंधे रखता है और उन्हें पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की ओर प्रेरित करता है।

IV) समन्वय (Coordinating): किसी संस्था के कार्यों में सुविधा उत्पन्न करने एवं सफलता प्राप्त करने के लिये सभी क्रियाओं में सामंजस्य उत्पन्न करना ही समन्वय है। इसके अभाव में लोग अलग अलग दिशाओं में काम करते हैं और उत्पादकता कुप्रभावित होती है और लागत व्यय बढ़ता है। अतः बर्नार्ड ने लिखा है "समन्वय किसी संगठन को जीवित रहने का महत्वपूर्ण तथ्य है।" समन्वय के अंतर्गत निम्न तत्व शामिल होते हैं:

- संतुलन
- समय निर्धारण
- विलयन

V) नियंत्रण (Controlling): नियंत्रण से आशय निर्धारित लक्ष्यों कि प्राप्ति हेतु किये जा रहे प्रयासों की जाँच करना तथा उनमें यदि कोई त्रुटि है तो उसे दूर करना है। नियंत्रण प्रक्रिया के निम्न चार तत्व हैं:

- लक्ष्यों तथा प्रमाणों का निर्धारण करना
- कार्यों का मूल्यांकन करना
- वास्तविक प्रगति को निर्धारित प्रमाणों से तुलना करना
- विचलन हेतु सुधारात्मक कार्यवाही करना

2.4.2 लूथर गुलिक का योगदान (Contribution of Luther-Gullick):

लूथर गुलिक ने 1937 में "Papers on the Science of Administration" नामक पुस्तक का संपादन किया जो प्रशासन के नियमों पर सर्वाधिक प्रभावशाली कृति है। उन्होंने प्रशासन के सात कार्य बताये। इन कार्यों के लिये "POSDCORB (पोस्ड कोर्ब)" शब्द का प्रयोग किया। इस चिन्ह का प्रत्येक शब्द प्रशासन के कार्यों का संबोधन करता है। ये कार्य निम्नलिखित हैं :

P- Planning (नियोजन): यह किसी संग का एक प्रमुख एवं सर्वोपरि कार्य है। नियोजन का अर्थ होता है निर्धारित लक्ष्यों कि प्राप्ति हेतु उपलब्ध वैकल्पिक नीतियों, विधियों एवं कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करना है।

O-Organizing (संगठन): इसके अंतर्गत नियोजन को कार्य रूप में परिणित करने के लिये क्रियाओं का निर्धारण करना, उन्हें विभिन्न भागों में विभक्त करना, विशिष्ट व्यक्ति समूह को सौपना तथा उनके मध्य पारस्परिक संबंधों को परिभाषित करना आदि सभी शामिल हैं।

S-Staffing (नियुक्तियां): स्टाफिंग से तात्पर्य प्रशासन द्वारा निर्धारित नीतियों के क्रियान्वयन हेतु योग्य एवं कर्मठ व्यक्तियों की नियुक्ति से हैं। इसके अंतर्गत पदाधिकारियों/कर्मचारियों का चयन, उनकी भर्ती, मूल्यांकन

एवं प्रशिक्षण शामिल हैं जिससे कि कार्य शक्ति संस्था/संगत के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग दे सके तथा कार्य निष्पादन के दौरान अधिकतम संतोष प्राप्त हो सके।

D-Directing (निर्देशन): निर्देशन से आशय नियत सिद्धांत एवं नीतियों के अनुसार किसी कार्य के क्रियान्वयन की समुचित देखभाल करना ही निर्देशन कहा जाता है। इसके अंतर्गत आदेश देना, निरीक्षण करना, मार्गदर्शन, अभिप्रेरित करना आदि शामिल है।

C- Coordinating (समन्वय): यह प्रशासन का वह कार्य है जो किसी संगठन के विभिन्न विभागों, सदस्यों तथा उनके समूहों में इस प्रकार एकीकरण स्थापित करता है की न्यूनतम लागत पर वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके।

R- Reporting (रिपोर्ट तैयार करना): इसके अंतर्गत प्रशासक अपने संगठन में हुये कार्यों या उसकी उपलब्धियों का विवरण तैयार करता है तथा अपने उच्चाधिकार्यों को इसकी जानकारी समय समय पर देता रहता है।

B-Budgeting (बजट बनाना): इसके अंतर्गत एक निश्चित समय सीमा के अंतर्गत राजस्व तथा खर्चों का लेखा जोखा तैयार किया जाता है।

2.4.3 प्रशासनिक विचारधारा की आलोचनार्ये(Criticisms of Administrative Theory):

प्रशासनिक विचारधारा के अनुयायियों ने ही सर्वप्रथम प्रशासन को एक प्रक्रिया के रूप में बताया। इस विचारधारा ने सभी संगठनों पर लागू होने वाले सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया। ये नियम आज भी सार्थक हैं। परन्तु इसकी आलोचना निम्नलिखित बिन्दुओं पर हुई है:

- I) यह विचारधारा प्रशासन के सिर्फ उच्च स्तरों पर ही ध्यान देती है।
- II) यह सिर्फ संगठन के औपचारिक स्वरूप की व्याख्या करती है।
- III) व्यवहारवादियों ने इसे यांत्रिक बताते हुये यह कहते हैं इसमें मानवीय पहलूओं को नकार दिया गया है। यह विचारधारा मानव रहित संगठन की कल्पना करता है।
- IV) यह किसी संगठनात्मक व्यवहार की गत्यात्मकता की व्याख्या नहीं करता है।
- V) यह पर्याप्त सत्यापन के बिना ही सर्वव्यापी नियमों पर बल देता है।
- VI) यह किसी संगठन को बंद व्यवस्था के समान समझता है।

VII) प्रशासकों का मार्गदर्शन करने के लिये को प्रशासन प्रक्रिया से संबंधित जो निश्चित कार्य बताये गये हैं वे अपर्याप्त हैं। यह सोचना भ्रम है कि बहु विविध उद्देश्यों वाले तथा जटिल संगठनों पर लागू करके एक अच्छा डिजाईन तैयार किया जा सकता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- | I | II |
|-------------|---|
| A. नियंत्रण | F. विविध संसाधनों का वितरण एवं उनके बीच कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित करना |
| B. संगठन | G. कार्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करना |
| C. निर्देशन | H. निर्णय लेना |
| D. समन्वय | I. पर्यवेक्षण मार्गदर्शन एवं अभिप्रेरणा |
| E. नियोजन | J. कार्यों का मूल्यांकन |

2.5 नौकरशाही (Bureaucracy)

18 वीं सदी के अंतिम दशक से ही प्रशासन के नौकरशाही रूप (Bureaucracy) की नींव पड़ चुकी थी। मोर्सटीन मार्क्स के अनुसार अंग्रेजी शब्द "ब्यूरोक्रेसी (Bureaucracy)" फ्रांसिसी शब्द "ब्यूरोक्रेटी (Bureaucratie)" से आया है। इस फ्रांसिसी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांस के वाणिज्य मंत्री द्वारा 18 शताब्दी में उस समय की सरकार के लिये किया गया। 19 शताब्दी में इस शब्द का नया रूप *Burokratie* जर्मनी में अपनाया गया और वहीं से यह शब्द अंग्रेजी भाषा में आया। आज संगठन का प्रभुत्वशाली रूप नौकरशाही है। इस शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। इसका प्रयोग कई बार एक प्रशासकीय वर्ग की पहचान के लिये किया जाता है तो कभी एक कार्य पद्धति, एक सिद्धांत या सामाजिक श्रेणी के रूप में किया जाता है।

2.5.1 नौकरशाही की परिभाषाएँ (Definitions of Bureaucracy):

मैक्स वेबर: नौकरशाही प्रबंध कार्य निष्पादन के लिये संबंधों, सत्ता, उद्देश्यों, भूमिकाओं, क्रियाओं, सम्प्रेषण आदि घटकों की संरचना है।

आर्थर डेविस: नौकरशाही व्यवस्थित नियमों द्वारा परिभाषित विशिष्ट पदों की एक एकीकृत श्रृंखला है यह एक अवैयक्तिक नित्यक्रमिक संरचना है जिसमें वैधानिक सत्ता पद से जुड़ी होती है किसी व्यक्ति से नहीं।

हिक्स एवं गुलिट: नौकरशाही विशिष्ट पदों का एकीकृत सोपान होता है जिनको व्यवस्थित नियमों के द्वारा परिभाषित किया गया होता है - यह एक अवैयक्तिक नित्यचर्या पर चलने वाली संरचना है जिसमें सत्ता पद से जुड़ी होती है, न कि उस व्यक्ति के साथ जो उस पद ओर काम करता है।

2.5.2 नौकरशाही की विशेषतायें (Features of Bureaucracy):

नौकरशाही को अपने अध्ययन का विषय वस्तु बनाने वाले विचारकों में कार्ल मार्क्स, रोबर्टो मिकल्स आदि प्रमुख हैं। परन्तु नौकरशाही का सबसे व्यवस्थित अध्ययन जर्मनी के समाजशास्त्री मैक्स वेबर (1864-1920) ने किया है। यह प्रशासन का एक प्रतिष्ठित एवं परम्परागत रूप है। इसकी मुख्य विशेषताएं निम्नांकित हैं :

I) विशिष्टीकरण एवं कार्य विभाजन (Specialization & Division of labour): वेबर के अनुसार नौकरशाही योग्यता का एक विशिष्ट क्षेत्र है। इसमें कार्यों का विभाजन करके पदधारक को उन कार्यों के सम्बन्ध में आवश्यक दायित्व एवं अधिकार सौंप दिए जाते हैं।

II) पदानुक्रम (Hierarchy): नौकरशाही के समस्त पद, स्तर, श्रेणियाँ एवं स्थितियाँ श्रिंखलाबद्ध होती हैं। प्रत्येक निम्न पद एक उच्च पद के नियंत्रण एवं मार्गदर्शन में होता है। इस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी किसी न किसी के नियंत्रण में होता है।

III) निरपेक्ष नियमों की प्रणाली (A System of abstracts rules): नौकरशाही प्रशासन में निरपेक्ष नियमों, विनियमों तथा कार्यविधियों की स्थिर व्यवस्था के आधार पर निर्णय लिए जाते हैं। संस्था के सदस्यों का व्यवहार अनुशासित एवं नियंत्रण के अधीन होता है।

IV) अवैयक्तिक संबंध (Impersonal relationship): नौकरशाही प्रशासन में कर्तव्यों का पालन अवैयक्तिक भावना के आधार पर किया जाता है। इसमें भावनात्मक संबंधों का कोई स्थान नहीं होता है। यह आदर्श बुद्धिवाद पर टिका रहता है यथार्थता पर नहीं।

V) योग्यता पर आधारित (Based on competency): इस प्रकार के प्रशासन में सदस्यों का चयन निष्पक्ष योग्यताओं के आधार पर किया जाता है। इन योग्यताओं की प्राप्ति प्रशिक्षण, परीक्षाओं के पास करने, डिप्लोमा अथवा इन सभी के माध्यम से होती है।

VI) कानूनी सत्ता एवं शक्ति (legal authority and power): नौकरशाही में सत्ता या शक्ति संस्था या पद में निहित होते हैं। एक व्यक्ति एक समय में एक पद पर कार्य करता है। जिस शक्ति का वह प्रयोग करता है उसकी वैधता उसे पद से प्राप्त होती है।

VII) जीवनकालिक उन्नति दृष्टिकोण (Career aspects): रोजमर्रा ही साधारणतया आधिकारियों का एक मात्र पेशा होती है। यह कार्य जीवन कालिक उन्नति का होता है जिसमें कार्य काल की स्थिरता और पेंशन के अधिकार प्राप्त होते हैं। पदोन्नति वरिष्ठता तथा अथवा उपलब्धि पर आधारित होती है जिसका निर्णय उच्चाधिकारी करते हैं। किसी निपेक्ष या विशिष्ट कारण से ही किसी को नौकरी से हटाया जा सकता है।

VIII) लिखित अभिलेख (Written documents): नौकरशाही व्यवस्था के अंतर्गत सभी प्रशासनिक नियमों, निर्णयों, तथा कार्यवाहियों का लिखित अभिलेख रखा जाता है। ऐसा करने से दो लाभ होते हैं – 1) ये अभिलेख ही प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाते हैं। 2) भविष्य के निर्णयों में इन अभिलेखों का इस्तेमाल सन्दर्भ के रूप में होता है।

2.5.3 नौकरशाही की आलोचनार्य (Criticisms of Bureaucracy):

I) नौकरशाही सिद्धांत को मशीन सिद्धांत भी कहा जाता है क्योंकि यह संगठन एवं वातावरण के बीच अन्तःक्रिया की व्याख्या नहीं करता है।

II) यह बंद प्रणाली का एक मॉडल प्रस्तुत करता है जिसमें परिवर्तन के साथ समायोजन की क्षमता नहीं होती है।

III) नौकरशाही के संरचनात्मक घटक उन कार्यों के लिये असरदार नहीं होते हैं जिनमें नवीनता एवं सृजनात्मकता होती है। ये केवल रूटीन कार्यों के लिये लाभकारी होते हैं।

IV) इससे संगठन में जड़ता, लोचनीयता, संकीर्णता तथा नियमों के बुद्धिहीन अनुगमन पर जोर देता है।

V) इससे अधीनस्थों के व्यक्तित्व के विकास में बाधा पहुँचती है क्योंकि वे सिर्फ अपने अधिकारियों के हाथों की काठपुतली मात्र होते हैं।

VI) इस व्यवस्था में प्रशासकों का अधिकांश समय कागजी कार्यवाही में व्यतीत होता है। प्रशासकों को "Glorified Clerk" की संज्ञा दी गयी है।

VII) लाल फीताशाही एक ऐसी समस्या है जिसका उद्गम स्थल नौकरशाही ही रही है।

VIII) यह व्यवस्था इस मान्यता पर आधारित है कि पद पर आसीन व्यक्ति तकनीकी रूप से योग्य ही होता है। परन्तु ऐसा कोई जरूरी नहीं है उसके आदेश हमेशा सही हों। ऐसे में अधीनस्थों के समक्ष विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है कि वो किसकी आज्ञा का पालन करें – सही आदेश निर्गत करने वाला व्यक्ति या अत्यधिक योग्यता वाला व्यक्ति (the person with the right command or the man with the great expertise)

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- 1 नौकरशाही सिद्धांतों की विस्तृत विवेचना मेक्स वेबर ने किया।
- 2 ब्यूरोक्रेसी फ्रांसिसी शब्द 'ब्यूरोक्रेटी(Bureaucratie)" से लिया गया है।
- 3 नौकरशाही व्यवस्था में सभी निर्णय शाब्दिक रूप में सुरक्षित रखे जाते हैं।
- 4 नौकरशाही व्यवस्था में सभी सदस्यों के बीच भावनात्मक सम्बन्ध होते हैं।
- 5 सत्ता और शक्ति – इन दोनों से ही नौकरशाही व्यवस्था में पद की पहचान होती है।

2.6 सारांश (Summary) :

इस इकाई में हमने यह पढ़ा कि प्रशासन के परम्परागत युग में तीन प्रमुख विचारधाराएँ प्रचलित हुई थीं। प्रथम, वैज्ञानिक प्रबंध – इसके जन्म दाता टेलर महोदय थे। यह कार्य को करने में वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग पर बल देती है। उन्होंने वैज्ञानिक प्रबंध की महत्वपूर्ण तकनीकें - क्रियात्मक फोरमैनिशिप, प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली, प्रमापीकरण, श्रमिकों का वैज्ञानिक चुनाव एवं प्रशिक्षण, कार्य का वैज्ञानिक वितरण, यन्त्र व सामग्री का वैज्ञानिक चयन, नियंत्रण की सामूहिक विचारधारा, कुशल लागत प्रणाली आदि को अपनाने पर बल दिया। द्वितीय, प्रशासकीय विचारधारा – इसके प्रवर्तकों में हेनरी फेयोल एवं लुटेर गुलिक का नाम अग्र गण्य है। इन सबों ने प्रशासन को प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करने के लिये प्रशासकीय कार्यों को आधार माना। हेनरी फेयोल ने प्रशासन के पांच कार्य बताये: नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय एवं नियंत्रण। जबकि लुथर गुलिक ने POSDCORD सूत्र के रूप में प्रशासन के कार्यों को स्पष्ट किया। तृतीय, नौकरशाही – इसका व्यवस्थित अध्ययन पहली बार मेक्स वेबर ने किया। उनके अनुसार नौकरशाही एक ऐसी व्यवस्था है जिसका अस्तित्व आज भी अनेक देशों में देखा जा सकता है। इसकी विशेषतायें- विशिष्टीकरण और कार्यविभाजन, पदानुक्रम, निरपेक्ष नियमों की प्रणाली, योग्यता पर आधारित, अवैयक्तिक संबंध, कानूनी सत्ता एवं शक्ति, जीवनकालिक उन्नति दृष्टिकोण, लिखित अभिलेख आदि हैं।

2.7 शब्दवाली (Glossary)

मानसिक क्रांति: श्रमिक एवं नियोक्ताओं की अभिवृत्तियों और दृष्टिकोणों में परिवर्तन।

क्रियात्मक फॉर्मैनिशिप: वह प्रारूप जिसमें कार्यात्मक विशेषज्ञों का श्रमिकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है तथा प्रत्येक श्रमिक को कई विशेषज्ञों से आदेश प्राप्त करने होते हैं।

प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली: कुशल मजदूरों को मजदूरी ऊँची दर दिये जाने की पद्धति।

विशिष्टीकरण: विशेष योग्यता के आधार पर कार्य का वितरण

पदानुक्रम: सत्ता और उत्तरदायित्व के आधार पर पदों का श्रृंखला बद्ध होना ।

2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. गलत 2. सही 3. गलत 4. सही 5. सही 6. गलत

अभ्यास प्रश्न 2

A- J, B- F, C- I, D- G, E- H

अभ्यास प्रश्न 3

1. सही 2. सही 3. गलत 4. गलत 5. सही

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ (Bibliography)

Kimball and Kimball. *Principles of Industrial Organisation*, 1967.

Knootz & Donell. *Principles of Management: An Analysis of Managerial Functions*. McGraw-Hill, New Delhi, 1972.

Terry, George.R. *Principles of Management*. All India Traveller Book Seller, New Delhi, 1981.

McFarland. *Management: Principles and Practice*. Macmillian, New York, 1976.

Oliver H. Sheldon. *The Philosophy of Management*. Pitman Publishing Corporation, New York, 1965.

T, Ordway. *The Art of Administration*, McGraw-Hill, New Delhi, 1951.

2.10 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. वैज्ञानिक प्रबंध से क्या तात्पर्य है ? टेलर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को स्पष्ट करें ।
 2. प्रशासन के क्षेत्र में हेनरी फोयोल के कार्य की समीक्षा कीजिये ।
 3. प्रशासन के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धांतों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।
 4. नौकरशाही को परिभाषित कीजिये । इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें ।
 5. नौकरशाही व्यवस्था की कौन कौन सी कमियाँ होती हैं ?
-

इकाई 3 : प्रशासन का मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत एवं कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति

**Human Relation Approach to
Administration and Meeting the
Psychological Needs of Employees**

इकाई की रूपरेखा

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत
 - 3.3.1 परिभाषायें
 - 3.3.2 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत और जार्ज एल्टन मेयो
 - 3.3.3 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के प्रमुख तत्व
 - 3.3.4 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत में अन्य विचारकों का योगदान
 - 3.3.5 आलोचनार्यें
- 3.4 कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकतायें
 - 3.4.1 सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सुझाव
- 3.5 सारांश
- 3.6 शब्दावली
- 3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रबंध जगत में 1920 तक टेलरवाद प्रचलित रहा। कार्यकुशलता तथा उत्पादकता बढ़ाने के लिये अब तक भौतिक एवं यांत्रिक घटकों पर ही ध्यान दिया जाता था। टेलरवाद के परिणामों – श्रमिक वर्ग की अमानुषिकरण की स्थिति तथा श्रमिक संगठन के आंदोलनों के कारण पश्चिमी देशों, विशेषतया संयुक्त राज्य अमेरिका में पूंजीवाद उद्योग में प्रबंध एवं संगठन की नई समस्या खड़ी हो गयी। इन्हीं औद्योगिक अशांति की समस्याओं के निदान हेतु तथा उत्पादकता एवं कार्यकुशलता बढ़ाने हेतु उद्योग मालिकों ने समाजशास्त्रियों से सुझाव मांगे। इन समाजशास्त्रियों ने परम्परावादी विचारधारा के सिद्धांतों की कमियों को उजागर किया। अपने प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला कि सारी समस्या मानवीय संबंधों की है। उन्होंने एक नई विचार धारा को जन्म दिया जिसे मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत भी कहा जाता है।

3.2 उद्देश्य (Objectives):

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के अर्थ एवं परिभाषा को बता सकेंगे।
- मानवीय सम्बन्ध विचारधारा में एल्टन मयो के प्रयोगों के बारे में जानकारी दे सकेंगे।
- मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- मानवीय सम्बन्ध विचारधारा में बर्नार्ड एवं फोलेट के योगदान की समीक्षा कर सकेंगे।
- मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के आलोचनाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- संगठन के सदस्यों की मनोवैज्ञानिक-सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सुझाव दे सकेंगे।

3.3 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत: (Human Relations Theory)

मानवीय सम्बन्ध से आशय किसी संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने तथा उनके हितों को सामान्य हितों के साथ एकीकृत करने से है। यह विचारधारा मानव को सिर्फ उत्पादन का साधन न मानकर उनके साथ मानवीय आधार पर व्यवहार करने पर बल देती है। प्रशासन सम्बन्धी विश्लेषण का यह दृष्टिकोण इस तथ्य पर आधारित है कि किसी प्रशासक का प्रमुख कार्य लोगों के साथ तथा उनके द्वारा काम करना है। अतः किसी संगठन में परस्पर वैयक्तिक संबंधों का केन्द्रीय स्थान होना चाहिए।

3.3.1 परिभाषाएँ (Definitions):

मेयर: मानवीय संबंध व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से व्यवहार करना है।

जोसेफ एल मेसी: मानवीय संबंध अभिप्रेरण की प्रक्रिया है जो उद्देश्यों में संतुलन स्थापित करती है तथा जिसका लक्ष्य अधिकतम मानवीय संतुष्टि प्राप्त करना तथा संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोग करना होता है ।

रोबर्ट साल्टन स्टाल: कार्यरत व्यक्तियों का अध्ययन ही मानवीय संबंध है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि मानवीय संबंध किसी संगठन में कार्य करने वाले व्यक्तियों का अध्ययन करता है । इसका उद्देश्य व्यक्तियों के व्यवहार को समझना, मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा संतुष्टि प्रदान करना है ताकि वे संगठन को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग दें सकें ।

3.3.2 मानवीय संबंध सिद्धांत और जार्ज इल्टन मेयो (Human Relation Theory and George Elton Mayo)

इस विचारधारा के जन्मदाता जार्ज एल्टन मेयो रहे हैं । उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर मानवीय संबंधों की दिशा में अनेक प्रयोग किये हैं । ये प्रयोग वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कंपनी के शिकागो स्थित हव्थोर्न संयंत्र में श्रमिकों पर 1924-1933 तक किये गये । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ये प्रयोग चार भागों में विभक्त किये जा सकते हैं:

- **प्रकाश प्रयोग(Illumination Experiment):** ये परीक्षण महिला कर्मचारियों पर किये गये तथा इनका मूल उद्देश्य यह पता लगाना था कि प्रकाश का श्रमिकों की कार्यक्षमता एवं उत्पादकता पर क्या प्रभाव पडता है । परीक्षण के अंतर्गत श्रमिकों को दो समूहों में विभक्त दिया गया, एक समूह के श्रमिकों को ऐसे स्थान पर रखा गया जहाँ प्रकाश की अच्छी व्यवस्था थी तथा दूसरे समूह के कार्यस्थल में प्रकाश की मात्रा में समय-समय पर परिवर्तन किया जाता रहा । इस प्रयोग में यह पाया गया कि दोनों समूहों की उत्पादकता बढ़ी है । इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि श्रमिकों कि कार्य क्षमता और उत्पादकता – दोनों पर ही प्रकाश का प्रभाव नगण्य है । इसलिये शोधकर्ताओ ने यह निष्कर्ष निकला कि प्रकाश के अतिरिक्त भी कोई तत्व है जो उत्पादन को प्रभावित करता है और वह घटक है " मानवीय संबंध "।
- **प्रसारण संयोजन जाँच-कक्ष प्रयोग (Relay Assembly Test Room Experiments):** यह प्रयोग पूर्व की विसंगतियों को दूर करने के लिये किया गया था । इसका उद्देश्य उत्पादन पर थकान के प्रभाव का माप करना था । इन परीक्षणों के लिये 6-6 लड़कियों के दो-दो समूह बनाये गये तथा उन्हें पृथक कक्षों में टेलीफोन उपकरण जोड़ने का का सौंपा गया । ये लड़कियां कार्य कुशलता एवं अनुभव में औसत श्रेणी की थीं । उनके कार्य की देख भाल के लिये एक सुपरवाइजर भी नियुक्त किया गया जो काम के निरीक्षण के साथ साथ कार्य वातावरण को

सौहार्दपूर्ण भी बनाता था। चार से बारह सप्ताह की प्रयोग अवधि में विभिन्न परिवर्तन करते हुये प्रयोग प्रारंभ किये गये। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला गया कि कार्य के भौतिक वातावरण का उत्पादन पर किसी तरह का प्रभाव पड़ना अनिश्चित है। दूसरे शब्दों में, फिर भी उत्पादन कम या अधिक हो सकता है। उत्पादकता एवं कार्य दशाओं में किसी प्रकार का कोई सह-सम्बन्ध नहीं किया जा सकता है। उत्पादन वृद्धि का प्रमुख कारण प्रबंधकों का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार एवं कार्य के दौरान कर्मचारियों को दी गयी स्वायत्तता तथा उच्च कर्मचारी मनोबल है।

- **बैंक कर्मचारी अवलोकन कक्ष प्रयोग (Bank Wiring Observation Room Experiment):** इस परीक्षण का उद्देश्य अनौपचारिक कार्यसमूहों का अवलोकनात्मक विश्लेषण करना था। इस प्रयोग के लिये 14 कर्मचारियों का एक समूह बनाकर उन्हें एक पृथक कक्ष में काम करने को कहा गया। कार्य दशाओं को अपरिवर्तित रखा गया तथा कार्य की देखभाल के लिये पर्यवेक्षक रखे गये थे। इस प्रयोग का यह निष्कर्ष निकला कि अनौपचारिक समूह का मुख्य कार्य अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित एवं नियमित करना होता है। इस प्रयोग ने यह भी स्पष्ट किया कि वित्तीय अभिप्रेरणा तथा कार्य सुरक्षा के स्थान पर कर्मचारियों के साथ अनौपचारिक सामाजिक संबंध करने से अच्छे मानवीय संबंध की स्थापना होती है।
- **साक्षात्कार कार्यक्रम (Interviewing Programme):** इस कार्यक्रम के अंतर्गत 1600 कर्मचारियों के 20,000 साक्षात्कार लिये गये थे जिनका उद्देश्य कंपनी की नीतियों, कार्य दशाओं, कार्य पद्धतियों, पर्यवेक्षण कार्य, वातावरण आदि के संबंध में कर्मचारी की रुचियों को जानना था। इस अध्ययन के ये निष्कर्ष निकले कि कर्मचारियों कि आजादी से अपने विचार प्रकट करने का अवसर देने से उनके मनोबल में वृद्धि होती है। कर्मचारी की मांगों पर संस्था के भीतर और बाहर दोनों प्रकार की पर्यावरणीय अनुभव का प्रभाव पड़ता है।

3.3.3 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत के मुख्य तत्व (Main Elements of Human Relation Theory):

हव्थोर्न प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर मेयो ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया वे मानवीय संबंधों के मुख्य तत्वों के रूप में विकसित हुये। ये तत्व निम्नांकित हैं।

I) मानवीय तत्व पर बल (Emphasis on Human Element): किसी भी उपक्रम के सदस्य केवल आर्थिक शक्ति नहीं है जिसका उद्देश्य मौद्रिक लाभ या प्रतिफल के लिये कार्य करना है। जबकि वे इच्छाओं, भावनाओं, आवश्यकताओं आदि से परिपूर्ण एक चेतनायुक्त प्राणी होते हैं।

II) अनौपचारिक समूहों का महत्व (Importance of Informal Groups): कार्य स्थल पर एक साथ कार्य करते-करते आपसी अंतःक्रियाओं एवं मेलजोल के कारण सदस्यों के बीच छोटे छोटे अनौपचारिक समूह बन जाते हैं जो कि उनकी क्रियाओं, दृष्टिकोणों एवं व्यवहारों पर सामाजिक नियंत्रण रखते हैं। इन अनौपचारिक समूहों के स्वयं के कार्य मानदंड, कार्य प्रारूप, नियम, सिद्धांत व मान्यतायें बन जाती हैं जो समस्त कार्य वातावरण को प्रभावित करती हैं।

III) कार्यक्षमता पर मानवीय एवं सामाजिक तत्वों का प्रभाव (Effect of Human and Social Elements on Working Capacity): किसी उपक्रम के सदस्यों की कार्यक्षमतापर न केवल भौतिक वातावरण सम्बन्धी घटकों का प्रभाव परता है बल्कि मानवीय व्यवहार सम्बन्धी तत्व जैसे- मनोबल, अभिवृत्ति, आपसी संबंध, सामाजिक संतुष्टि आदि का भी प्रभाव पड़ता है।

IV) सामाजिक व्यक्ति की अवधारणा (Concept of Social man): इस विचारधारा के अनुसार सामाजिक व्यक्ति की मान्यतायें निम्नांकित हैं:

- व्यक्ति मूल रूप से अपनी सामाजिक आवश्यकताओं से प्रेरित होता है तथा समूह संबंधों के द्वारा अपने व्यक्तित्व एवं पहचान के बीच बोध को विकसित करता है।
- वह कार्य में सामाजिक संबंधों पर बल देता है।
- वह अपने समकक्ष समूह की सामाजिक शक्तियों के प्रति अधिक अनुक्रियाशील होता है।

V) मान्यता, आत्मविकास व मनोबल पर बल (Emphasis on Recognition, Self-Actualization and Morale): मान्यता, आत्मविकास व मनोबल - ये तीनों ही किसी उपक्रम के सदस्यों की उच्च मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें होती हैं जिनकी संतुष्टि उचित अवसरों को प्रदान करके की जानी चाहिये।

VI) मानव सहयोग (Human Collaboration): किसी उपक्रम में श्रेष्ठ कार्य संस्कृति बनाने हेतु तकनीकी कौशल के स्थान पर मानव सहयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

VII) शिकायतें संकेत मात्र हैं (Complaints are only symptoms): किसी उपक्रम के सदस्यों की शिकायतें केवल तथ्यों का विवरण ही नहीं होती, वरन् वे उनके अंदर छुपे हुये दुखों एवं असंतोष का द्योतक होती हैं।

VIII) उदार पर्यवेक्षण प्रणाली (Liberal Supervisory Style): स्वतंत्र, उदार और सहानुभूति पूर्ण पर्यवेक्षण प्रणाली सदस्यों को आर्थिक कार्य करने के लिये प्रेरित करती है। जब सदस्यों को स्वतन्त्रतापूर्वक विचार विमर्श करने, कार्य की विधि एवं आवश्यक पहलूओं का निर्धारण करने तथा कार्य एवं वातावरण पर नियंत्रण रखने की स्वतंत्रता होती है तो वे अधिक लगन तथा उत्साह से कार्य करते हैं।

IX) कार्य एक सामूहिक क्रिया है (Work is a group activity): किसी संगठन में कार्य वैयक्तिक क्रिया नहीं है वरन यह एक सामूहिक क्रिया है। सामूहिक रूप से कार्य करते हुये सदस्य न केवल संगठनात्मक बल्कि वैयक्तिक लक्ष्यों को भी सरलता से प्राप्त कर सकते हैं।

X) भाग लेने योग्य प्रबंध व्यवस्था (Participative Management): कोई भी संगठन सामाजिक संबंधों से निर्मित एक सामाजिक इकाई होती है। अतः किसी भी संगठन में निर्णयन प्रक्रिया में केवल प्रशासक ही नहीं वरन उसमें काम करने वाले कर्मचारीगण भी होते हैं।

3.3.4 मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत में अन्य विचारकों का योगदान (Contribution of Other in Human Relation Theory)

मेयो के विचारों को आगे बढ़ाने में निम्नलिखित दो विचारकों के भी योगदान अद्वितीय हैं

चेस्टर आर्नो बार्नार्ड (Chester I Banard): मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन के प्रतिभाशाली सिद्धांतवादियों में चेस्टर आर्नो बार्नार्ड का नाम आता है। वे मेयो के समकालीन थे। 1938 में प्रकाशित पुस्तक "The functions of the Executive" में उनके विचार प्रकाशित हुये जिसने प्रशासकीय विचारधारा के विकास को नयी दिशा दी। उनके प्रमुख विचार निम्नांकित हैं :

I) संगठन एक सहकारी प्रणाली (Organization As A Cooperative System): उनके अनुसार संगठन एक ऐसी प्रणाली है जो मानवीय क्रियाओं से मिलकर बनती है तथा सदस्यों के प्रयास जो कि समन्वित होते हैं, इन क्रियाओं को एक प्रणाली में बदल देते हैं। कोई भी संगठन योगदानों एवं संतुष्टि के संतुलन सिद्धांत पर काम करता है। सदस्यों के प्रयास को योगदान कहते हैं जबकि संतुष्टि संगठन द्वारा प्रदान किये जाते हैं।

II) प्रेरणाओं की अर्थव्यवस्था (The Economy of Incentives): उसके अनुसार व्यक्तियों के प्रयास ही संगठन की उर्जा बन जाते हैं। किन्तु ये प्रयास उन्हें प्रदान की गयी प्रेरणाओं पर निर्भर करते हैं। उसने प्रेरणाओं को दो भागों में विभक्त किया है:

(क) विशिष्ट प्रेरणायें: ये निम्नलिखित चार प्रकार के हैं -

- भौतिक प्रलोभन जैसे - मुद्रा, वस्तुयें या भौतिक दशायें;
- व्यक्तिगत अभौतिक प्रेरणायें जैसे – विशिष्ट पद, प्रतिष्ठा, मान्यता के अवसर, निजी अधिकार;
- कार्य की उपयुक्त भौतिक दशाएं;
- आदर्श उपकार जैसे शिल्प का गौरव, परमार्थवादी भावना, राष्ट्र भक्ति, पूर्णता का अहसास, संगठन निष्ठा, धार्मिक एवं सौन्दर्य बोध आदि;

(ख) सामान्य प्रेरणायें: ये निम्नलिखित चार प्रकार के हैं –

- संस्थात्मक आकर्षण जिसे बर्नार्ड ने सामाजिक संगतता कहा है। उन्होंने बताया कि जातीय मतभेद, वर्ग संघर्ष, राष्ट्रीय शत्रुतायें, रीति-रिवाज, सामाजिक स्तर, शिक्षा, आकांक्षा, धर्म व नैतिकता संगठन में सहयोग को समाप्त कर देते हैं। अतः मानव प्रेम, एकता व मैत्री पूर्ण संबंधों के आधार पर प्रेरणा प्रदान की जानी चाहिये।
- परम्परागत कार्य की दशायें व अभ्यास जनित व्यवहारों व प्रवृत्तियों की अनुपालना
- विस्तृत भागीदारी के अवसर एवं
- बंधुत्व ओर भाईचारे की स्थिति

बर्नार्ड ने यह सुझाव दिया कि इन प्रेरणाओं का दिया जाना परिस्थिति, समय और व्यक्ति पर निर्भर करता है।

III) औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन(Formal and Informal Organization): बर्नार्ड का विचार है कि औपचारिक संगठन बनावटी व्यवस्थायें होती हैं तथा अनौपचारिक संगठनों जो कि प्राकृतिक व्यवस्थायें हैं, में से विकसित हुये हैं। उसके अनुसार औपचारिक संगठन के तीन आवश्यक तत्त्व होते हैं जो कि सभी प्रकार के संगठनों में पाए जाते हैं :I) सदस्यों के बीच सम्प्रेषण II) सदस्यों द्वारा सहयोग या योगदान की इच्छा III) सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति। दूसरी ओर, अनौपचारिक संगठनों का निर्माण व्यक्तिगत संपर्कों तथा अन्तःक्रियाओं के कारण होता है। ये संगठन औपचारिक संगठन के लिये ऐसी कार्य दशाओं का निर्माण करते हैं जिसमें वे कुशलता पूर्वक कार्य कर सकें।

IV) सत्ता का सिद्धांत (Theory of Authority): बर्नार्ड का यह मत है कि स्वीकृति ही सत्ता का आधार होती है। एक अधिकारी की सत्ता सदैव उसके अधीनस्थों द्वारा सत्ता के प्रति दी गयी स्वीकृति/अनुमति पर निर्भर करती है। प्रशासकीय सत्ता का वास्तविक श्रोत उच्च पद या स्थिति न होकर अधीनस्थों की स्वीकृति होती है। वे आगे कहते हैं कि व्यक्ति निम्नांकित चार दशाओं में आदेश को स्वीकार करता है:

- जब वह आदेशों को पूर्ण रूप से समझ पता है।
- जब आदेश संगठन के उद्देश्य के प्रतिकूल नहीं हो।
- जब आदेश उसके निजी हितों के अनुकूल हों तथा उसके लिये किसी प्रकार से अहितकर नहीं हों।
- जब वह शारीरिक ओर मानसिक रूप से आदेशों का पालन करने में समर्थ होता है।

V) उदासीनता का क्षेत्र (Zone of Indifference): उन्होंने आदेशों की स्वीकृति के सम्बन्ध में उदासीनता का क्षेत्र के विचार का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार स्वीकृति योग्यता की दृष्टि से समस्त आदेशों को तीन

श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ आदेश ऐसे हफ़े हैं जो स्वीकृति योग्य नहीं होते हैं। दूसरे शब्दों में अधीनस्थों द्वारा उनका पालन नहीं किया जाता है। कुछ आदेश तटस्थता की पंक्ति में होते हैं अर्थात् उन्हें मुश्किल से स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। तीसरी श्रेणी में वे आदेश आते हैं जो अधीनस्थों द्वारा निर्विवाद रूप से स्वीकार किये जाते हैं। बर्नार्ड के अनुसार तीसरी श्रेणी के आदेश ही उदासीनता के क्षेत्र में आते हैं। व्यक्ति कुछ आदेशों के प्रति सत्ता की दृष्टि से उदासीन होते हैं। वे यह जानने कि कोशिश नहीं करते कि आदेश क्या हैं क्योंकि सामान्य रूप से उनके परिणामों व प्रभावों का संगठन में आने के समय ही पूर्वानुमान कर लेते हैं। उदाहरण के लिये, जिन व्यक्तियों की न्युक्ति राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा डिग्री कॉलेजों में प्रवक्ता के पद पर होती है, उन्हें यह पहले से पता रहता है कि स्थानान्तरण होना एक सामान्य बात है। ऐसे में स्थानान्तरण के आदेश के प्रति ज्यादा चिंतित नहीं रहते हैं। ये लोग उदासीन ही रहते हैं चाहे उनका स्थानान्तरण कहीं भी कर दिया जाये। दूसरे शब्दों में, जिन आदेशों के प्रभाव से व्यक्ति परिचित होता है, उसके प्रति प्रायः उदासीन हो जाता है। ऐसे आदेश उसके उदासीनता क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का उदासीनता क्षेत्र पृथक- पृथक होता है।

मेरी पार्कर फोलेट(Mary Parker Follet): मानव सम्बन्ध विचारधारा के इतिहास में मेरी पार्कर फोलेट की एक पृथक पहचान है। उन्होंने व्यवसायिक संगठनों में संबंधों के मनोविज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किये। उनके योगदानों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है :

I) रचनात्मक संघर्ष (Constructive Conflict): सामान्यतया संघर्ष या मतभेद को किसी उपक्रम/संगठन में बुरा माना जाता है। फोलेट ने पहली बार इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि संघर्ष न अच्छा होता है न बुरा, बल्कि यह अच्छे या बुरे परिणामों के लिये प्रशासकों को अवसर प्रदान करता है। संघर्ष किसी भी संगठन में रचनात्मक भूमिका निभा सकता है। यह इनके उपयोग पर निर्भर करता है। यह कोई युद्ध नहीं है, वरन् यह विचारों अथवा हितों की भिन्नता का आभास है। उनके अनुसार संघर्ष के समाधान की तीन विधियाँ होती हैं:

- **प्रभुत्व (Domination):** इसका आशय एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार पर विजय प्राप्त करना है। इसमें दबाव, बल प्रयोग एवं दूसरे के हितों पर चोट करने जैसी घटनाएँ शामिल होती हैं। इसी वजह से पार्कर ने इस विधि को अनुचित बताया है।
- **समझौता(Compromise):** इस विधि में दोनों पक्ष अपनी मांगों के कुछ अंश परित्याग करके किसी मध्य बिन्दू पर अनिच्छापूर्वक सहमत हो जाते हैं। यह विधि प्रभुत्व से अच्छी होती है।
- **एकीकरण (Integration):** एकीकरण संघर्ष समाधान की सर्वोत्तम विधि होती है। एकीकरण से आशय किसी ऐसे नए समाधान या विकल्प की खोज करना है जिसमें दोनों पक्षों की वास्तविक मांगें पूरी हो सकें। यह नये व्यवहार द्वारा दोनों पक्षों को संतुष्टि प्रदान करता है।

II) आदेशों का मनोविज्ञान एवं स्थिति का नियम (The Psychology of Order Giving and The law of situation): फोलेट ने 1925 अपने पेपर "The Giving of Orders" में प्रशासकों द्वारा किये जाने वाले आदेशों के मनोवैज्ञानिक पहलूओं का विश्लेषण किया था। ये विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में स्पष्ट किये गये हैं:

- आदेश देने मात्र से ही संतोषपूर्ण परिणाम प्राप्त हो जायेंगे, यह आवश्यक नहीं है।
- किसी आदेश के प्रति बौद्धिक सहमति प्रकट करना भी स्वयं में अच्छे निष्पादन की गारंटी नहीं है।
- कोई कार्यवाही आदेश की अपेक्षा व्यक्ति के पूर्व अनुभवों के आधार पर निर्मित उसके स्वभाव प्रारूपों (Habit Pattern) पर अधिक निर्भर करती है।
- प्रशासकों को अपने सदस्यों में आदत प्रारूपों एवं मानसिक अभिवृत्तियों का निर्माण करना चाहिये।
- ये प्रारूप एवं अभिवृत्तियाँ प्रशिक्षण द्वारा विकसित की जा सकती हैं।
- प्रशासकों को अपने कार्यों की सम्भावित प्रक्रियाओं का पूर्वानुमान करते हुये उनके किये पूर्व तैयारी कर लेनी चाहिये।
- व्यक्ति आपने भीतर संघर्ष का अनुभव कर सकते हैं।
- आदेशों के फलस्वरूप संघर्षों की उत्पत्ति नहीं, बल्कि उनका समाधान होना चाहिये।

फोलेट ने ही सर्वप्रथम स्थिति के तत्त्व का संगठन के सन्दर्भ में विश्लेषण किया। उन्होंने स्थिति के नियम का प्रयोग आदेश देने के सम्बन्ध में किया था। उनका सुझाव था कि "आदेशों के निर्व्यक्तिकरण (Depersonalization of Orders)" का प्रयोग होना चाहिये। प्रशासकों एवं सदस्यों को संयुक्त रूप से स्थिति का अध्ययन करना चाहिये। एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति पर आदेश जारी नहीं करने चाहिये, बल्कि उन्हें स्थिति से ही आदेश प्राप्त करने चाहिये। दूसरे शब्दों में, यहाँ स्थिति क्रिया-विकल्प उपलब्ध कराती है जिसे दोनों पक्षों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। आदेश स्थिति से प्राप्त करने पर सदस्यों को यह महसूस नहीं होगा कि वे किसी व्यक्ति के अधिकार और नियन्त्रण में कार्य कर रहे हैं। फलस्वरूप उनके पारस्परिक संबंधों में मधुरता बनी रहेगी।

III) समन्वय सिद्धांत (Principle of coordination): मेरी फोलेट ने समन्वय को प्रशासन का केन्द्रीय सार भाग बताया है। उनके अनुसार प्रभावशाली समन्वय के निम्नलिखित चार सिद्धांत होते हैं:

- **प्रत्यक्ष संपर्क का सिद्धांत (The Principle of Direct Control):** इसके अंतर्गत अन्तर्वैक्तिक समतल संबंधों व व्यक्तिगत सम्प्रेषण की व्यवस्था के द्वारा समन्वय करने का सुझाव दिया।

- **प्रारंभिक अवस्था में समन्वय का सिद्धांत (The Principle of Coordination in Early Stages):** समन्वय की प्रक्रिया योजना बनाने और नीति निर्धारण करते समय ही आरम्भ हो जानी चाहिये। योजनाओं और नीतियों के निर्माण के पूर्व ही विभिन्न विभागों के अध्यक्षों से तथा कर्मचारियों से परामर्श कर लिया जाना चाहिये।
- **पारस्परिक सम्बन्ध का सिद्धांत (The Principle of Reciprocal Relationships):** समन्वय के इस सिद्धांत के अनुसार किसी स्थिति विशेष में सभी घटक पारस्परिक रूप से संबंधित होते हैं। अर्थात् किसी संगठन के सभी सदस्य अपने पारस्परिक संबंधों एवं अन्तःक्रियाशीलता के कारण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा स्वयं भी एक दूसरे से प्रभावित होते हैं।
- **सतत प्रक्रिया का सिद्धांत (The Principle of Continuous Process):** समन्वय एक सतत प्रक्रिया है अर्थात् समन्वय का कार्य संगठन में सदैव ही चलता रहना चाहिये और इसे अवसरों पर नहीं छोड़ा जाना चाहिये।

IV) सहमति एवं सहभागिता का मनोविज्ञान (The Psychology of Consent and Participation):

फोलेट ने यह कहा है कि संगठन/उपक्रम एक क्रियाशील इकाई है जो सभी के विचारों एवं ज्ञान से संचालित होता है। अतः विभिन्न कार्यों एवं निर्णयों में सदस्यों की सहमति प्राप्त करने के साथ उनकी सहभागिता भी आवश्यक है। सहमति एवं सहभागिता प्राप्त करने के लिए उन्होंने तीन उपाये बताये हैं जो कि निम्नलिखित हैं:

- संगठन की संरचना में द्वि-मार्गीय सम्प्रेषण एवं परामर्श की व्यवस्था होनी चाहिये।
- दैनिक प्रबंध व्यवहार में सहभागिता के सिद्धांत को मान्यता दी जानी चाहिये तथा सदस्यों के विचारों का निरंतर उपयोग किया जाना चाहिये।
- संघर्षों के समाधान तथा विभिन्न प्रवृत्तियों, प्रकृति एवं ज्ञान वाले व्यक्तियों के विविध विचारों में सामंजस्य एवं उपयोग की उपयुक्त विधि का विकास किया जाना चाहिये।

V) अधिकार एवं उत्तरदायित्व की अवधारणा (The Concept of Authority and responsibility):

फोलेट का यह मत था कि किसी संगठन के सम्पूर्ण अधिकार व शक्ति उच्चतम अधिकारी को सौंप देना उचित नहीं है। प्रशासन में अंतिम सत्ता (Ultimate Authority) व सर्वोच्च नियंत्रण (Supreme Control) जैसे शब्दों का प्रयोग भ्रामक है। समस्त शक्तियों का संगठन के शीर्ष पर केन्द्रीकरण कर देना अत्यंत अव्यवहारिक एवं निराधार धारणा है।

उनका यह मत था कि किसी व्यक्ति को अधीनस्थ मान कर उस पर अधिकार रखना व्यक्तित्व की भावनाओं के प्रति अपमान और अपराध है। यह स्थिति कभी भी सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था की नींव नहीं बन

सकती है। उन्होंने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को कार्य सत्ता (Authority of Function) दी जानी चाहिये। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जिसे जो कार्य सौंपा जाये वह उस कार्य के लिए अंतिम रूप से उत्तरदायी होना चाहिये। उसे अपने कार्य क्षेत्र के बारे में अधिकार मिलना चाहिये। उन्होंने लिखा है "अधिकार कार्य के साथ संबंधित है और कार्य के साथ ही रहता है (Authority belongs to the job and stays with the job)".

उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में उनका विचार था कि वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति को कार्य के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये किसी व्यक्ति के प्रति नहीं (A person must be responsible for work not to someone)। विभागीय स्तर पर कार्य के प्रति वे सभी उत्तरदायी होंगे जिन्होंने अपना योगदान दिया है। प्रशासक को विभिन्न वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्तरदायित्वों में केवल समन्वय स्थापित करने वाला होना चाहिये।

3.3.5 आलोचनार्यें (Criticisms):

I) इस सिद्धांत में अनौपचारिक समूहों पर बल दिये जाने के कारण संगठन के औपचारिक स्वरूप, सत्ता एवं सिद्धांतों की उपेक्षा की जाने लगी है।

II) इस सिद्धांत के विचारकों ने मानवीय संबंधों को साधन के बजाय साध्य/लक्ष्य ही मान लिया है। जबकि वास्तविकता यह है कि सुपरिभाषित लक्ष्यों तथा प्रशासकीय निष्पादनों को मानवीय संबंधों से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है।

III) इस सिद्धांत में सम्पूर्ण व्यक्ति के विचार को भुला दिया गया है। व्यक्ति सिर्फ सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से ही प्रेरित नहीं होते हैं जबकि आर्थिक आयाम भी उनके जीवन से जुड़े होते हैं।

IV) कुछ आलोचकों के अनुसार मानवीय सम्बन्ध सिद्धांतों से सम्बंधित प्रयोग पूर्ण रूप से वैज्ञानिक नहीं थे। कार्य, श्रमिक एवं वातावरण के चयन का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था और न ही इसके सम्बन्ध में कोई वैज्ञानिक विधि अपनायी गयी।

V) मानवीय सम्बन्ध सिद्धांतों में संगठन के कार्य की प्रकृति एवं उसके संरचना की अनदेखी की गयी है जो कि किसी भी संगठन के लिये महत्वपूर्ण विषय है।

3.4 कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकतायें (Psychological and Social Needs Of Employees) :

किसी भी संस्था का आधार स्तम्भ उनमें काम करने वाले कर्मचारी/सदस्य ही होते हैं। तकनीकी रूप से इन लोगों को उस संस्था/संगठन का मानव शक्ति (Man power) कहा जाता है। कोई भी संस्था/संगठन चाहे समृद्ध और विकासोन्मुखी क्यों न हो, उसे इस स्थिति तक पहुंचाने वाले वहाँ कार्यरत कर्मचारी/सदस्य ही होते हैं। कर्मचारियों/सदस्यों की मूलतः दो प्रकार की आवश्यकतायें होती हैं। प्रथम, आर्थिक आवश्यकतायें तथा द्वितीय, मनोवैज्ञानिक-सामाजिक आवश्यकतायें। प्रथम प्रकार की आवश्यकताओं का स्वरूप मौद्रिक होता है

। जबकि दूसरे प्रकार की आवश्यकतायें संतुष्टि, स्वस्थ मनोदेशायें, पहचान, आदि से जुड़ी होती हैं। इन्हीं आवश्यकताओं को मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकता कहा जाता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित आवश्यकताओं का समवेश किया जाता है:

I) महत्वपूर्ण बनने की भावना (Feeling of Being Important): यह भावना प्रायः सभी व्यक्तियों में होती है चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो। उदाहरण के लिये प्रत्येक शिक्षक यह चाहता है कि विद्यालय के प्राध्यापक उसके कार्यों को गंभीरता से लें और उसको अपनी संस्था का महत्वपूर्ण अंग समझे।

II) आत्म-सम्मान की भावना (Feeling of Self esteem): प्रत्येक व्यक्ति हमेशा अपने आत्म-सम्मान को बनाये रखना चाहता है। उसका पद कितना भी निम्न श्रेणी का क्यों न हो, किसी को यह अधिकार नहीं है कि उसके अहम को चोट पहुंचाये या उसकी बेईज्जती करे।

III) समाज में इज्जत के साथ रहना तथा समाज द्वारा मान्यता की आवश्यकता (Need of living with Dignity in Society and Getting Societal Approval): मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज के साथ अन्य सहयोगियों-सम्बन्धियों के साथ रहने की उसमें स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। ऐसी दशा में प्रशासकों का यह दायित्व बनता है वे सदस्यों की इस सामाजिक आवश्यकता की संतुष्टि करें।

IV) स्नेह का आदान-प्रदान (Exchange of Love and Affection): किसी संस्था में कार्यरत सभी सदस्य आपस में मिलजुल काम करना रहना चाहते हैं। वे हमेशा एक दूसरे की मदद को तैयार रहते हैं। इससे उनके बीच स्नेह का आदान प्रदान होता रहता है और संस्था का माहौल सौहार्द्रपूर्ण बना रहता है।

V) सुरक्षा एवं शांति की आवश्यकता (Needs of Security and Peace): रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं की भांति प्रत्येक सदस्य यह चाहता है कि वह जिस संस्था में कार्य कर रहा है वहां उसकी सेवा स्थायी प्रकृति की हो। कोई भी व्यक्ति आपने जीवन में अशांति नहीं पसंद नहीं करता है। संस्था के सदस्य सुरक्षित सेवार्यें पसंद करते हैं, नौकरी से किसी भी क्षण निकल दिये जाने की आशंका से वे अपने कार्य में रूचि खो देते हैं। अतः कर्मचारी राज्य बीमा, पेंशन एवं प्रोविडेंट फंड, वृद्धावस्था में सुरक्षा, बीमारी की अवस्था में चिकित्सीय सहायता एवं अवकाश आदि योजनाओं से श्रमिकों में सुरक्षा की भावना को बढ़ायी जा सकती है।

VI) जीवन में कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा (Desire to Acquire Something Special): प्रत्येक सदस्य यह चाहता है की वह अपने सेवाकाल में कुछ प्राप्त करे। इस मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की संतुष्टि में यदि प्रशासक सहायक है तो सदस्य को प्रेरणा मिलती है।

VII) अन्य आवश्यकतायें (Other Needs): इस शीर्षक के अंतर्गत श्रमिकों की अन्य विविध प्रकार की आवश्यकताओं का समावेश किया जा सकता है जैसे- पूछताछ एवं: समझने की आवश्यकता, प्रयोग व शोध की आवश्यकता।

3.4.1 मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सुझाव (Suggestions for Fulfillment of Psychological and Social Needs):

किसी भी संगठन में सदस्यों/कर्मचारियों मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक होती है क्योंकि उनकी कार्य क्षमता का सीधा सम्बन्ध उनके मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दशाओं (**Psycho-Socio Built-Up**) से है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

I) कार्य स्थल का वातावरण (Ambience of Work Place): भय मुक्त एवं सौहार्द पूर्ण वातावरण ही सदस्यों/कर्मचारियों में आत्म-विश्वास उत्पन्न करता है। अतः कार्य स्थल का वातावरण ऐसा होना चाहिए कि कर्मचारी स्वतंत्र होकर संगठन में पूर्ण मनोयोग से कार्य कर सकें।

II) मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध (Friendly Relation): नियोक्ता एवं कर्मचारियों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होने चाहिये। इससे कर्मचारी स्वयं को संगठन से जुड़ा हुआ मानने लगते हैं और अपने कार्यों में रूचि लेते हैं।

III) कर्मचारियों की सेवा पुस्तिका (Employee's Service Book): इस पुस्तिका में कर्मचारियों के सेवा सम्बन्धी नियमों का उल्लेख होता है। इसके अतिरिक्त उसमें उनकी फोटो, जन्म तिथि, उँगलियों तथा अंगूठों के चिन्ह, निवास स्थान, पदनाम, पद का प्रकार (मौलिक/स्थानापन्न/ स्थाई/अस्थायी) नियुक्ति की तिथि, वेतनमान, पद च्युति का दिनांक और कारण, लिए हुए अवकाश के प्रकार एवं अवधि, कर्मचारी को दिए गए दंड या पुरस्कार या प्रशंसा का विवरण, अर्जित अवकाश आदि का लेखा होता है।

IV) अवकाश का प्रावधान (Leave Arrangement): संगठन में कार्यरत सदस्यों को मानसिक रूप से स्वस्थ होना चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि उन्हें साप्ताहिक अवकाश के अतिरिक्त आकस्मिक अवकाश (Causal Leave), चिकित्सा अवकाश (Medical Leave), अर्जित अवकाश (Earned Leave) दिये जायें।

V) पदोन्नति का प्रावधान (Provisions of Promotion): संगठन के सदस्यों/कर्मचारियों को समय-समय पर पदोन्नति दी जानी चाहिये। पदोन्नति का आधार वरीयता/सेवा काल न होकर कार्य की गुणवत्ता होनी चाहिये।

VI) सेवा का स्थायीकरण (Permanence of Services): जिन संगठनों में कर्मचारी स्थाई तौर पर बहाल नहीं किये जाये जाते हैं वहाँ पर निष्पादन संतोषपूर्ण नहीं होता है। ठेके पर बहाल किये गये कर्मचारी उस संगठन से लगाव महसूस नहीं करते हैं और हमेशा नौकरी से हटाये जाने का भय बना रहता है। अतः यह आवश्यक है कि अधिकतम दो सालों तक लगातार सेवाएँ देने पर उस कर्मचारी/सदस्य को सेवाएँ स्थाई/नियमित कर दी जानी चाहिये।

VII) निर्णयों में पारदर्शिता (Transparency in Decision Making): एक प्रशासक जो भी क्रिया करता है वह निर्णयन के द्वारा करता है। अतः उसे व्यक्तिगत तौर पर निर्णय न लेकर सामूहिक तौर पर निर्णय लेने चाहिये। उसे निर्णय प्रक्रिया को पारदर्शी बनाना चाहिये। ऐसा करने से संगठन के सदस्यों को भी यह अहसास होता है कि वे संगठन के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं।

VIII) विशिष्ट कार्यों के किये पुनर्वहन (Reinforcement for Specific Work): संगठन के कर्मचारियों/सदस्यों को उनके विशिष्ट योगदानों या कार्यों के लिए सम्मानित किया जाना चाहिये। यह सम्मान मेडल, पुरस्कार या सुविधाओं के रूप में दिया जाना चाहिये।

IX) नव प्रवर्तन को प्रोत्साहन (Encouragement to Innovations): एक ही तरह का कार्य लम्बे समय तक करते रहने से कर्मचारियों/सदस्यों में बोरियत/उबाऊपन आ जाता है। इससे निजात पाने के लिए यह आवश्यक होता है कि संगठन में काम करने के नये तरीकों या नयी सोच को बढ़ावा दिया जाये।

X) दुर्घटना सम्बन्धी बीमा (Accident Insurance): संगठन के सदस्यों/कर्मचारियों किसी दुर्घटना या गंभीर चोट के शिकार हो सकते हैं। ऐसे में उनके इलाज या दवाईयों या आपरेशन पर बहुत रुपया खर्च होने की सम्भावना होती है। इस विषम परिस्थिति से लड़ने हेतु यह आवश्यक है कि संगठन द्वारा उनकी दुर्घटना सम्बन्धी बीमा करायी जाये।

XI) अवकाश प्राप्ति पर परिलब्धियाँ (Retirement Benefits): अवकाश प्राप्ति पर कर्मचारियों के लिये PPF, Gratuity, Leave Encashment आदि का प्रावधान होना चाहिये।

XII) Other Allowances and perks (अन्य भत्ते एवं परिलाब्धियाँ): इसके अंतर्गत आवासीय सुविधा, बच्चों के लिए स्कूल की सुविधा, यात्रा भत्ता, कैंटीन, अस्पताल, क्लब आदि सुविधायें शामिल हैं।

समूल्यांकन हेतु प्रश्न

- 1) हथोर्न संयंत्र में प्रयोग एल्टन मयो और उनके साथियों द्वारा किया गया।
- 2) मेरी पार्कर फोलेट ने रचनात्मक संघर्ष की अवधारणा का सूत्रपात किया है।
- 3) PPF तथा Gratuity कर्मचारियों को अवकाश प्राप्ति पर मिलने वाली परिलाब्धियाँ होती हैं।
- 4) शांति एवं सुरक्षा की आवश्यकता एक आर्थिक आवश्यकता होती है।
- 5) आदेशों के निर्व्यक्तिकरण की अवधारणा प्रतिपादन एल्टन मयो ने किया था।

3.5 सारांश (Summary) :

मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत का जन्म टेलरवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। यह सिद्धांत परम्परावादी सिद्धांत के आर्थिक मनुष्य की धारणा को चुनौती देती है। मेयो के हथोर्न प्रयोगों ने इस सिद्धांत को एक निश्चित दिशा दी। उन्होंने ने जिन प्रमुख तत्वों पर बल दिया वे इस प्रकार हैं: मानवीय तत्व, औपचारिक समूह, मानव सहयोग, सामाजिक मनुष्य की अवधारणा, उदार पर्यवेक्षण प्रणाली, सहभागी प्रबंध, कार्यक्षमता पर मानवीय एवं सामाजिक तत्वों का प्रभाव मान्यता, आत्मविकास व मनोबल पर बल, कार्य एक सामूहिक क्रिया के रूप में। इसके अतिरिक्त चेस्टर बर्नार्ड एवं मेरी पार्कर फोलेट ने भी इसे एक नया आयाम प्रदान किया। चेस्टर बर्नार्ड के प्रमुख सिद्धांत थे: संगठन एक सहकारी प्रणाली, प्रेरणाओं की अर्थव्यवस्था, औपचारिक संगठन पर बल, सत्ता का सिद्धांत तथा उदासीनता का क्षेत्र। मेरी पार्कर फोलेट ने रचनात्मक संघर्ष, आदेशों का मनोविज्ञान एवं स्थिति का नियम, समन्वय सिद्धांत, सहमति एवं सहभागिता, अधिकार एवं उत्तरदायित्व की अवधारणा आदि

पर बल दिया। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं के अंतर्गत आनेवाली आवश्यकतायें यथा महत्वपूर्ण बनने की भावना, आत्म-सम्मान की भावना, समाज में इज्जत के साथ रहना तथा समाज द्वारा मान्यता, स्नेह का आदान-प्रदान, सुरक्षा एवं शांति की आवश्यकता, जीवन में कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा आदि महत्वपूर्ण हैं।

3.6 शब्दवाली (Glossary)

1. हथोर्न प्रयोग: एल्टन द्वारा किया गया प्रयोग
 2. मानवीय सम्बन्ध सिद्धांत: व्यक्तियों का अध्ययन
 3. आदेशों के निर्व्यक्तिकरण: आदेश स्थिति से प्राप्त होते हैं, व्यक्ति से नहीं।
 4. अनौपचारिक संगठन: व्यक्तिगत संपर्कों तथा अन्तःक्रियाओं कारण बना संगठन।
 5. सहकारी प्रणाली: व्यक्तियों के संयुक्त प्रयास से निर्मित व्यवस्था।
-

3.7 समूल्यांकन हेतु प्रश्न के उत्तर

अभ्यास प्रश्न- 1

- 1) सही 2) सही 3) सही 4) गलत 5) गलत
-

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (Bibliography)

1. Awasthi, A & S. Maheshwari, *Public Administration*. Lakshmi Narayan Agarwal, Agra, 2011.
 2. Bhatnagar, R.P. & V. Aggarwal. *Educational Administration, Supervision, Planning &*
 3. *Financing*. R.L Book Depot, Meerut, 2009.
 4. Bhattacharya, M. *New Horizons of Public Administration*, Jawahar Publishers & Distributors, New Delhi, 2011.
 5. Chandra, S.S & A.K., Chakraborty *School Administration, Organisation, Management and Supervision*. R.Lal Book Depot, Meerut, 2008.
 6. Mukherjee, S.N. *Administration of Education, Planning & Finance (Theory and Practices)*. Archarya Book Depot, Baroda, 1970.
 7. Owens, Robert.G. *Organisational Behaviour In Education: Adaptive Leadership & School Reform*. Pearson, Boston.
 8. Prasad, L.M. *Organisational Behaviour*. S Chand & Sons, New Delhi, 2005.
 9. Saxena, L.C. *Prabandh Ke Siddhant* Sahitya Bhawan, Agra, 2002.
-

10. Sharma, G.D & G.C. Khurana, *Prabandh Ke Siddhant*. Ramesh Book Depot, Jaipur, 2007.
11. Sharma, M.P & B.L. Sadana *Lok Prashasn* Kitab Mahal, Alladabad. 2011.
12. Stephens J. Knezevish. *Administration of Public Education*. Happer & Row Publishers,
13. Newyork.

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव सम्बन्ध को परिभाषित करें। इस सिद्धांत के विकास में हथोर्न प्रयोगों की व्याख्या करें।
2. मानव सम्बन्ध सिद्धांत के विकास में मेयो के योगदान पर प्रकाश डालें।
3. मानव सम्बन्ध सिद्धांत को समृद्ध करने में चेस्टर बर्नार्ड एवं मेरी पार्कर फोलेट के विचारों का उल्लेख करें।
4. मानव सम्बन्ध सिद्धांत की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालें एवं उनकी अलोचनाओं को लिखें।
5. कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आवश्यकताएं कौन कौन सी होती हैं ? उनकी पूर्ति हेतु उपायों की चर्चा करें।

इकाई 4 : शैक्षिक प्रशासन की नूतन प्रवृत्तियाँ New Trends of Educational Administration

इकाई की रूपरेखा

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 प्रशासन का प्रणाली उपागम
 - 4.3.1 प्रणाली की परिभाषायें
 - 4.3.2 प्रणाली की कार्यविधि
 - 4.3.3 प्रणाली के घटक
 - 4.3.4 प्रणाली की प्रकृति
- 4.4 निर्णयन
 - 4.4.1 निर्णयन की परिभाषायें
 - 4.4.2 निर्णयन के विशिष्ट लक्षण
 - 4.4.3 निर्णयन की प्रक्रिया
- 4.5 संगठनात्मक विकास
 - 4.5.1 संगठनात्मक विकास की परिभाषायें
 - 4.5.2 संगठनात्मक विकास के उद्देश्य
 - 4.5.3 संगठनात्मक विकास की प्रक्रिया
- 4.6 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT)
 - 4.6.1 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT) के चरण
 - 4.6.2 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT) तंत्र का निर्माण
 - 4.6.3 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT) की लाभ एवं सीमायें
- 4.7 सारांश
- 4.8 शब्दावली
- 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

थॉमस जेफ़रसन का कथन है "मैं विगत इतिहास की तुलना में भविष्य के सपनों को अधिक पसंद करता हूँ। "यह सच है कि भविष्य में ही व्यक्ति के या किसी उपक्रम के स्वप्न, योजनायें, चुनौतियाँ, अवसर, विकास दृश्य, प्रतिबद्धतायें आदि निहित होती हैं। शिक्षा जगत भी निरंतर बदल रहा है – नये विचारों, नयी तकनीकों,

नये चिंतन एवं नये सन्दर्भों के साथ। शैक्षिक प्रशासन में नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही हैं, नई चुनौतियाँ उठ रही हैं तथा नये सामाजिक एवं नीतिगत मूल्यों का उदय हो रहा है। इस नये उतरदायित्वों एवं चुनौतियों से शैक्षिक प्रशासन का स्वरूप अत्यंत गतिशील हो चुका है। प्रस्तुत इकाई में हम इसकी कुछ नई प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य (Objectives) :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- प्रशासन के प्रणाली उपागम के तात्पर्य को बता सकेंगे।
- प्रणाली को परिभाषित कर सकेंगे।
- प्रणाली के घटकों एवं प्रकृति पर को स्पष्ट कर सकेंगे।
- निर्णयन की परिभाषा एवं अर्थ को बता सकेंगे।
- निर्णयन की विशेषतायें एवं सिद्धांतों को बता सकेंगे।
- निर्णयन की प्रक्रिया पर प्रकाश दल सकेंगे।
- संगठनात्मक विकास की परिभाषा एवं अर्थ को बता सकेंगे।
- संगठनात्मक विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट कर सकेंगे।
- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT)के विभिन्न चरणों के बारे में बता सकेंगे।
- कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक (PERT) के लाभ एवं सीमाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।

4.3 प्रशासन का प्रणाली उपागम (System Approach to Administration) :

आधुनिक युग में प्रशासन के अद्ध्ययन को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण एक तकनीकी के रूप में अपनाया जाने लगा है। इस दृष्टिकोण की व्याख्या करने से पूर्व "प्रणाली" का अर्थ समझना आवश्यक है। सामान्यतः "प्रणाली" से आशय किसी कार्य को सम्पन्न करने की पद्धति या ढंग से होता है, किन्तु व्यापक दृष्टि से "प्रणाली" से आशय किसी सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विभिन्न क्रियाओं के परस्पर संकलन से है। जिस प्रकार मानव शरीर एक सम्पूर्ण प्रणाली है जिसमें अनेक उपप्रणालियाँ समिलित हैं जैसे नाड़ी प्रणाली, श्वसन प्रणाली, पाचन प्रणाली आदि उसी प्रकार एक उपक्रम भी अनेक उपप्रणालियों की एक प्रणाली होती है। प्रणाली सम्पूर्णता से संबंधित होती है, खण्डों से नहीं। प्रणाली के अंतर्गत सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये अमुक कार्य को विभिन्न चरणों में विभाजित करके एक क्रम निर्धारित कर लिया जाता है तथा उसी के अनुरूप कार्य का निष्पादन किया जाता है। इस प्रकार प्रणाली

दृष्टिकोण से आशय किसी सम्पूर्ण के विश्लेषण एवं अध्ययन से है। प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण विशिष्टता के स्थान पर सामान्यता पर अधिक बल देता है।

4.3.1 प्रणाली की परिभाषायें (Definitions of System):

कूटज व ओ' डोनेल: प्रणाली को परस्पर क्रियाओं द्वारा उद्देश्यों या कार्यों के एक संकलन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

जे ए मोर्टन: प्रणाली विभिन्न अंगों का परस्पर संकलन है जो एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मिलकर कार्य करते हैं।

सेमुर टील्स: प्रणाली परस्पर सम्बद्ध भागों का एक समूह होती है।

जॉन ए बेकेट: प्रणाली परस्पर क्रियाशील प्रणालियों का संकलन है।

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रणाली किसी सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिये रचित अन्तः क्रियाओं का एक समन्वित रूप है।

4.3.2 प्रणाली की कार्य विधि (Working Procedure of System):

प्रत्येक प्रणाली की एक निश्चित कार्यविधि होती है। यह अपने वातावरण से साधन एवं निवेश प्राप्त करती है। उसके बाद प्रणाली द्वारा उन साधनों का प्रसंस्करण अथवा रूपांतरण करके उत्पादन या निर्माण किया जाता है जिसे समाज या वातावरण को प्रदान किया जाता है। प्रत्येक प्रणाली में पुनः निवेश की व्यवस्था भी होती है जिसके द्वारा उत्पाद या परिणामों का मूल्यांकन करके संबंधित सूचना एवं तथ्य सुधार हेतु पुनः निवेश के लिये संप्रेषित किये जाते हैं। प्रणाली निरंतर वातावरण से जुड़ी होती है। एक प्रणाली की कार्य विधि को आगे दर्शाये गये चित्र से समझा जा सकता है।

4.3.3 प्रणाली के घटक या तत्व (Components of System):

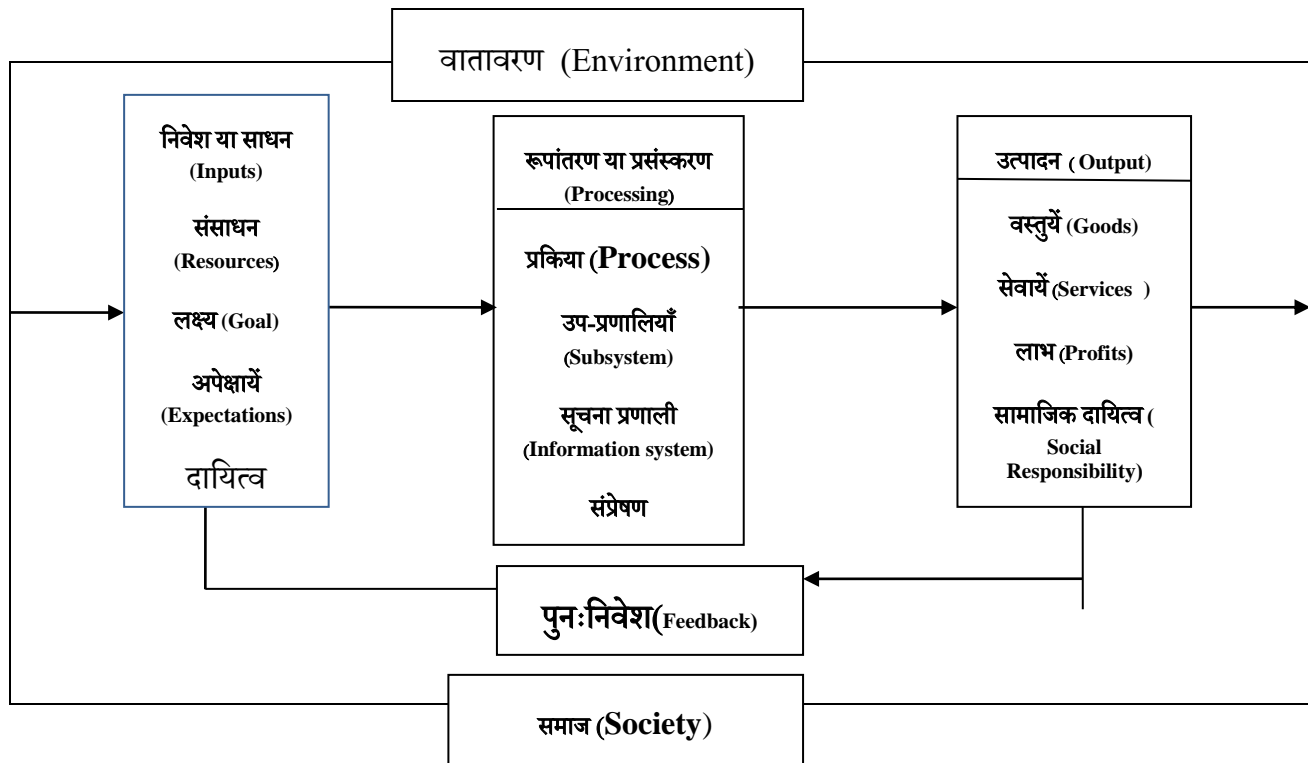
I) निवेश (Inputs): इसके अंतर्गत किसी संगठन में मानव, श्रम, भौतिक साधन, मशीन आदि आते हैं। साथ ही विभिन्न वर्गों के लक्ष्य तथा उनकी अपेक्षायें भी निवेश में शामिल हैं।

II) रूपांतरण क्रिया (Transformation Process): इसमें विभिन्न उपप्रणालियों के माध्यम से वातावरण से प्राप्त निवेशों का रूपांतरण किया जाता है।

III) उत्पादन (Output): इसमें निवेश किए गये संसाधनों का रूपांतरण करके संगठन के सदस्यों की कार्यकुशलता एवं योग्यता की वृद्धि की जाती है।

IV) पृष्ठ पोषण (Feedback): इसमें निवेश, विभिन्न उद्देश्यों, अपेक्षाओं, आशाओं आदि का मूल्यांकन करके कमियों तथा त्रुटियों का पता लगाया जाता है और उन्हें दूर किया जाता है।

V) संचार व्यवस्था (Communication System): सभी विभागों के कुशल संचालन तथा प्रबंधकीय कार्यों के सफल निष्पादन के लिये कुशल संचार की व्यवस्था करनी होती है। बाह्य वातावरण से संपर्क करने तथा विभिन्न वर्गों जैसे सरकार, पेशेवर संस्थानों, अन्संधानकर्ताओं आदि से जुड़ने के लिये यह प्रणाली आवश्यक है।



4.3.4 प्रणाली की प्रकृति (Nature of System):

I) **सम्पूर्ण का अध्ययन (Study of Whole)** – सम्पूर्ण उपक्रम एक इकाई के रूप में कार्य करता है जो विभिन्न विभागों में विभाजित होता है। ये विभाग अपने आप में पूर्ण एवं स्वतंत्र होते हुये भी पृथक् रूप में होते हैं जिनको बाँटकर अलग अलग अध्ययन नहीं किया जा सकता है।

II) **समन्वित प्रयास (Coordinated Effort)** – यह विचारधारा यह मानती है कि एक उपक्रम विभिन्न विभागों, अनुभागों व मनुष्यों का संकलन मात्र नहीं है। अतः प्रशासक इनके प्रयासों को समन्वित करके कुल परिणामों में वृद्धि कर सकता है।

III) **अन्तःसंबंधों पर ध्यान (Focus upon Interrelationships)** – किसी उपक्रम के विभिन्न विभागों की क्रियायें परस्पर रूप से संबंधित होती हैं। विभागों के कार्यकारी औपचारिक सम्बन्ध होते हैं। ये एक-दूसरे की क्रियाओं से प्रभावित होते हैं।

IV) **सामान्य उद्देश्य की पूर्ति (Fulfillment of General Objectives)** – यद्यपि प्रत्येक विभाग के कुछ विशिष्ट लक्ष्य होते हैं जिनकी प्राप्ति के लिये वे प्रयत्नशील होते हैं किन्तु उपक्रम का लक्ष्य सर्वोपरि होता है। प्रत्येक विभाग उपक्रम के उद्देश्य, योजनाओं व नीतियों के अनुरूप ही अपने कार्यों का संचालन करता है।

V) प्रतिपुष्टि (Feedback) – किसी प्रशासक का उद्देश्य उपक्रम की क्रियाओं में एक गतिशील साम्य (Dynamic Homeostasis) बनाये रखना होता है। अतः प्रशासक को उपक्रम में प्रतिपुष्टि (Feedback) एवं सम्प्रेषण (communication) की व्यवस्था करनी होती है।

VI) सम-अन्तिमता (Equifinality) – प्रशासन की कोई एक श्रेष्ठ विधि नहीं हो सकती। प्रशासक विभिन्न संसाधनों, प्रक्रियाओं, अथवा विधियों के द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार प्रशासक सम-अन्तिमता पर बल देता है।

VII) वातावरण से संबद्ध (Related with Environment) – उपक्रम एक सामाजिक प्रणाली है। अतः उसे न केवल आंतरिक वातावरण वरन् बाह्य वातावरण भी प्रभावित करता है।

4.4 निर्णयन (Decision Making) :

निर्णय लेना किसी प्रशासक का एक प्रमुख कार्य है। निर्णय के बिना किसी भी संस्था को कारगर नहीं बनाया जा सकता है। आर. एस. डावर के अनुसार "एक प्रशासक जो भी करता है वह निर्णय पर आधारित होता है। उसे निर्णय लेकर ही अपने कर्तव्यों का निष्पादन करना पड़ता है"। उदाहरण के लिए एक विद्यालय के प्रशासक को यह सोचना पड़ता है कि उस विद्यालय को संचालित करने के लिए कितने शैक्षणिक एवं गैर शैक्षणिक कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। उसे यह तय करना होता है कि विद्यालय कि समय सारिणी क्या होगी और कौन से शिक्षक को कितने कालांश दिए जायेंगे? इन प्रश्नों पर चिंतन करके किसी निष्कर्ष तक पहुँचने का कार्य ही निर्णयन कहा जाता है। इस तरह एक प्रशासक अनेक विकल्पों पर विचार करके किसी श्रेष्ठ विकल्प का चयन करता है ताकि कम समय एवं न्यूनतम लागत पर कार्यों को सम्पन्न किया जा सके।

4.4.1 निर्णयन की परिभाषायें (Definitions of Decision Making):

वेबस्टर शब्दकोष: निर्णयन किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में किसी विचार या क्रिया विधि को निर्धारित करने की क्रिया है।

कूज एवं विहरिच: निर्णयन किसी क्रियाविधि के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का चयन करना है।

चेस्टर बर्नार्ड: निर्णयन की प्रक्रियायें प्रमुख रूप से चयन को सीमित करने की तकनीकें हैं।

ट्रेवेथा तथा न्यूपोर्ट: निर्णयन में से किसी समस्या का समाधान करने के लिये दो या अधिक संभावित विकल्पों में से किसी एक क्रियाविधि का चयन किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि निर्णयन एक बौद्धिक क्रिया है जिसमें किसी कार्य को करने या किसी समस्या के समाधान के लिये विभिन्न संभावित विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चयन किया जाता है। निर्णयन किसी वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये एक सर्वश्रेष्ठ क्रियाविधि के चयन की प्रक्रिया है।

4.4.2 निर्णयन की विशेषतायें (Characteristics of Decision Making):

- निर्णयन विभिन्न चरणों में विभाजित एक प्रक्रिया है।
- यह श्रेष्ठ विकल्प की खोज एवं चयन की प्रक्रिया है।
- यह एक बौद्धिक एवं विवेकपूर्ण प्रक्रिया है।

- निर्णयन के कुछ मानदंड या आधार होते हैं।
- सामान्यतः तर्कपूर्ण एवं पर्याप्त विचार – विमर्श के बाद ही निर्णय लिये जाते हैं
- निर्णय कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लिये जाते हैं। यह एक सामाजिक एवं मानवीय प्रक्रिया है।
- निर्णयन परिस्थितियों, संसाधनों तथा कार्य वातावरण से प्रभावित होता है।
- निर्णयन वास्तविक स्थिति के समरूप होते हैं
- निर्णयन नियोजन का एक अंग है।
- निर्णयन में समय तत्व महत्वपूर्ण होता है।
- निर्णयों की एक क्रमिक श्रृंखला होती है। कोई भी निर्णय अकेला नहीं होता है। वह अपने पहले और बाद के निर्णयों से किसी न किसी रूप में जुड़ा रहता है।
- निर्णयन स्वयं में कोई लक्ष्य नहीं होता है जबकि यह अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन है।
- निर्णयन से वचनबद्धता या कार्यवाही का जन्म होता है।

4.4.3 निर्णयन के सिद्धांत(Principles of Decision Making):

किसी प्रशासक को निर्णय लेने हेतु कुछ आधारभूत सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए जो इस प्रकार हैं:

I) उचित व्यवहार का सिद्धांत Principle of Reasonable Behaviour): निर्णय लेते समय प्रशासक को मानवीय व्यवहार का अध्ययन करके उसे समझना चाहिए। उसे उस निर्णय से अपने अधीनस्थों/सहकर्मियों पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन चाहिए।

II) सीमित घटक का सिद्धांत (Principle of Limiting Factors): किसी प्रशासक को निर्णय लेते समय उन घटकों को पहचान लेना चाहिए जो इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति में सीमित हैं।

III) गतिशीलता का सिद्धांत (Principle of Dynamics): किसी भी संस्था के सदस्यों की आवश्यकतायें, उद्देश्य, मनोदशायें, सामाजिक मूल्य, राजनीतिक दशायें, आर्थिक परिवेश आदि सभी बदलते रहते हैं। इन सभी को ध्यान में रख कर ही प्रशासक को निर्णय लेने चाहिये।

IV) समय का सिद्धांत (Principle of Timing): अनुकूल और अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिये सही समय पर सही निर्णय लेना चाहिये तथा उनका क्रियान्वयन भी सही समय पर सही तरीके से होना चाहिये।

V) अनुपातिक सिद्धांत (Principle of Proportionality): निर्णय लेते समय वित्तीय, मानवीय एवं समय संसाधनों का आनुपातिक संयोजन रखा जाना चाहिये।

VI) सहभागिता का सिद्धांत (Principle of Participation): निर्णय लेते समय निर्णय से प्रभावित सभी पक्षकारों को निर्णयन में सहभागिता प्रदान की जानी चाहिए।

VII) विकल्पों का सिद्धांत (Principle of Alternatives): किसी समस्या के समाधान हेतु निर्णय लेने से पूर्व प्रशासक को विभिन्न विकल्पों का पता लगाकर उनका सही सही मूल्यांकन करना चाहिए।

VIII) लोच का सिद्धांत (Principle of Flexibility): प्रशासकों द्वारा लिये गये निर्णय लोचशील होने चाहिये ताकि उन्हें परिवर्तित परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुरूप समायोजित किया जा सके।

IX) अधिकतम लाभ का सिद्धांत (Principle of Profit Maximization): इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक प्रशासक को अपने निर्णयों में संगठन के आर्थिक, मानवीय सेवा उद्देश्यों का इस प्रकार से समन्वय करना चाहिये कि वह संगठन को अधिक रूप से लाभान्वित कर सके।

X) संदेह का सिद्धांत (Principle of Doubt): संदेह की स्थिति निर्णयन का हृदय होती है। कौन सा विकल्प श्रेष्ठ है इस सम्बन्ध में निर्णय कर्ता के मस्तिष्क में अनिश्चितता रहनी चाहिये। संदेह ही विकल्पों के विश्लेषण और मूल्याङ्कन को जन्म देता है।

4.4.4 निर्णयन प्रक्रिया (Decision Making Process):

निर्णयन प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न चरण शामिल होते हैं। ये चरण निम्नलिखित हैं:

I) स्थिति परीक्षण एवं समस्या की परिभाषा (Investigating the situation and defining the problem): निर्णयन प्रक्रिया तभी आरम्भ होती जब कोई प्रशासक किसी समस्या को हल करने या किसी अवसर का लाभ उठाने की आवश्यकता अनुभव करता है। इसमें निम्न चार पहलुओं पर विचार किया जाता है –

- **समस्या का अभिज्ञान (Problem awareness):** समस्या की जानकारी होने पर ही प्रशासक उसके समाधान के लिये प्रयास करता है।
- **समस्या निदान (Problem Diagnosis):** प्रत्येक प्रशासक को समस्या के लक्षणों एवं मूल कारणों को जानने का प्रयास करना चाहिये।
- **वातावरणीय विश्लेषण (Environmental analysis):** वातावरण के विभिन्न घटकों जैसे राष्ट्रीय नीतियाँ एवं निर्णय, प्रतिस्पर्धा, टेक्नोलॉजी आदि का विश्लेषण करने से समस्या निदान के लिये पर्याप्त सूचनायें प्राप्त हो जाती हैं।
- **समस्या को परिभाषित करना (Defining the problem):** इस चरण में किसी समस्या को प्रशासक सही-सही समझ कर उसे परिभाषित करता है।

II) समस्या का विश्लेषण करना (Analyzing the problem): समस्या के विश्लेषण में निम्न जानकारियों को एकत्रित किया जाता है –

- निर्णय किसे लेना है ?
- निर्णय किस तरह से लेना है ?
- निर्णय लेने हेतु कौन कौन सी सूचनायें एकत्रित करनी है ?
- निर्णय से प्रभावित होने वाले क्षेत्र एवं कार्य कौन-कौन से हैं ?

III) वैकल्पिक समाधानों का विकास करना (Developing alternatives): विभिन्न समाधान विकल्पों का विकास किये बिना कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता है। विकल्पों के अभाव में निर्णय नहीं वरन विवशता होती है। विकल्पों के विकास के लिये निर्णयकर्ता को अपनी सृजनात्मकता, कल्पना एवं दूरदृष्टि का प्रयोग करना चाहिये।

IV) विकल्पों का मूल्यांकन करना (Evaluating alternatives): विकल्पों के मूल्यांकन का उद्देश्य ऐसे विकल्प को निर्धारित करना है जो उद्देश्य के अनुकूल परिणाम उत्पन्न करता हो। विकल्पों के मूल्यांकन के प्रमुख मापदंड निम्न होते हैं –

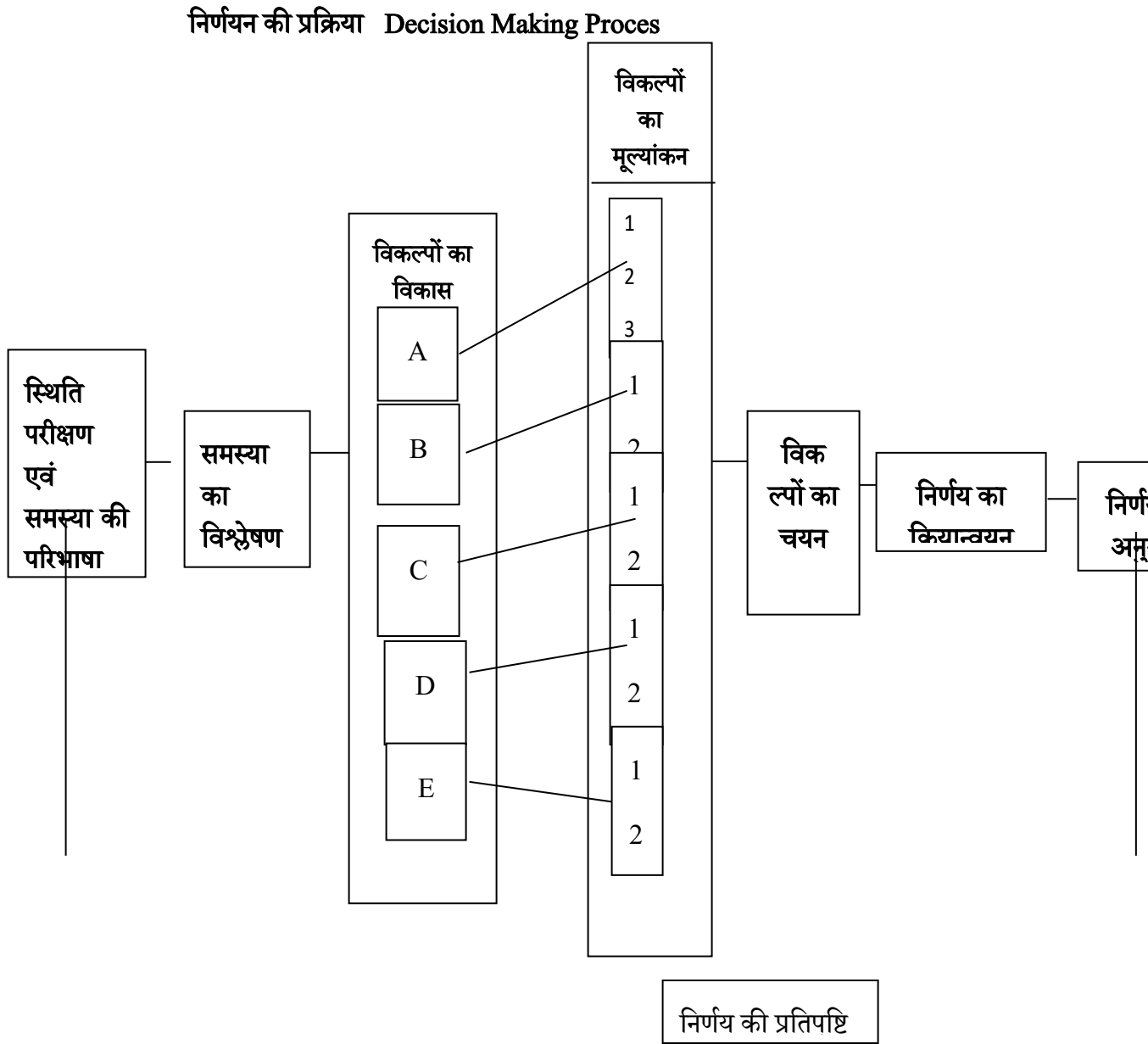
- **उपयुक्तता (Suitability):** क्या विकल्प समस्या को हल कर सकेगा ?
- **व्यवहार्यता (Practicability):** क्या विकल्प लागत, क्षमता और व्यय की दृष्टि से व्यवहारिक है ?
- **स्वीकार्यता (Acceptability):** क्या विकल्प प्रभावित लोगों को स्वीकार्य होगा ?
- **क्रियाशीलता (Functionality):** क्या विकल्प को व्यवहार में क्रियान्वित कर पाना सरल होगा ?

V) सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन (Selecting the best alternative): वैकल्पिक समाधानों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करने के लिये अनेक प्रमाणों का प्रयोग किया जाता है जो निम्नवत है

- **जोखिम (Risk):** सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करते समय निर्णयकर्ता को प्रत्याशित लाभों की तुलना में उसके जोखिमों का मूल्यांकन करना चाहिये।
- **प्रयास की मितव्ययिता (Economy of Effort):** सामान्यतः ऐसे समाधान का चयन करना चाहिये जिसमें न्यूनतम प्रयासों से अधिकतम परिणाम प्राप्त हो सके।
- **समयानुकूल (Timing):** सर्वश्रेष्ठ विकल्प समय की आवश्यकताओं तथा आकस्मिकता को पूरा करने वाला तथा स्थिति की मांग के अनुसार भी होना चाहिये।
- **संसाधनों की सीमा (Limitation of Resources):** सर्वश्रेष्ठ विकल्प संसाधनों की सीमा के भीतर होना चाहिये।

VI) निर्णय का क्रियान्वयन (Implementing Decisions): इस चरण में निर्णयन को कार्यवाही में बदला जाता है। यदि किसी निर्णयन को क्रियान्वित नहीं किया जाता है तो वह मात्र एक कोरी कल्पना होती है और कुछ नहीं।

VII) निर्णयन का अनुगमन तथा प्रतिपुष्टि (Following up decisions and feeding up the results): इसके अंतर्गत निर्णयन के प्रभावों की जानकारी लेना तथा निर्णय की सफलता और असफलता का मूल्यांकन किया जाता है।



स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- 1) प्रणाली उपागम में किसी संगठन को के रूप में देखा जाता है ।
- 2) प्रणाली उपागम के अंतर्गत उद्देश्यों की पूर्ति पर ध्यान दिया जाता है ।
- 3) निर्णयन एक प्रक्रिया है ।
- 4) निर्णयन में श्रेष्ठ का चयन किया जाता है ।
- 5) प्रणाली उपागम में विभिन्न उपप्रणालियों के माध्यम से से प्राप्त निवेशों का रूपांतरण किया जाता है ।
- 6) निर्णयन का प्रथम चरण..... होती है ।

4.5 संगठनात्मक विकास (Organizational Development) :

हमारा वातावरण, जीवन परिवेश, संगठनात्मक व्यवहार, हमारी संस्कृति आदि निरंतर प्रवाहशील हैं। व्यवस्थित, एकीकृत एवं नियोजित परिवर्तन के द्वारा किसी संगठन को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। संगठनात्मक विकास व्यक्तियों को परिवर्तन के लिये तैयार करने तथा परिवर्तन का प्रबंध करने की प्रक्रिया है। यह व्यक्तियों की अभिवृत्तियों, मूल्यों, व्यवहार एवं संगठन की संरचना तथा नीति में समग्र परिवर्तन लाने की क्रिया है। संगठनात्मक विकास शब्दावली का प्रवर्तन करने का श्रेय रोबर्ट ब्लेक, हेर्बर्ट शेफर्ड और जेनी माउटन को जाता है।

4.5.1 संगठनात्मक विकास की परिभाषायें (Definitions of Organizational Development):

गोर्डन लिपिट: संगठन विकास संगठन में उन मानवीय प्रक्रियाओं को सुदृढ़ करता है जो संगठित प्रणाली की कार्य शीलता में वृद्धि करती है ताकि इसके लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके।

वारेन जी० बैनिस: संगठन विकास परिवर्तन का प्रत्युत्तर है, एक जटिल शैक्षिक रण नीति है जिसका उद्देश्य संगठन के विश्वासों, अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं संरचना में परिवर्तन करना है ताकि वे नयी प्रौद्योगिकी, चुनौतियों तथा स्वयं परिवर्तन की तीव्र गति के साथ अपने को ढाल सकें।

रिचर्ड बेकहार्ड: संगठन विकास वह प्रयास है जो नियोजित, संगठन विस्तृत तथा उच्च स्तर से प्रतिबंधित है तथा जो व्यवहारवादी विज्ञान के ज्ञान का उपयोग करते हुये संगठन की प्रक्रियाओं में नियोजित हस्तक्षेप के जरिये संगठन की प्रभावशीलता और स्वास्थ्य में वृद्धि करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है संगठन विकास नियोजित परिवर्तन एवं व्यवहारवादी शिक्षण की एक दीर्घकालीन एवं संगठन व्यापी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत संगठन की तकनीकी व मानवीय प्रक्रियाओं,

मूल्यों, संस्कृति एवं संरचनाओं में परिवर्तन लाकर संगठन क्षमता प्रभावशीलता, गत्यात्मकता और परिपक्वता में वृद्धि की जाती है।

4.5.2 संगठनात्मक विकास के उद्देश्य (Objectives of Organizational Development) :

संगठनात्मक विकास के निम्नांकित उद्देश्य होते हैं :

- संगठनात्मक सदस्यों के बीच व्यक्तिगत उत्साह, संतुष्टि तथा समर्थन को बढ़ाना।
- सभी दिशाओं में खुले संचार को बढ़ाना।
- अधिक प्रभावी कार्य समूहों का विकास करना।
- सुव्यवस्थित ढंग से समस्या समाधान एवं संघर्षों के समाधान हेतु अंतर्व्यक्तिक सक्षमता में सुधार लाना।
- समग्र संगठनात्मक वातावरण में सुधार लाना।

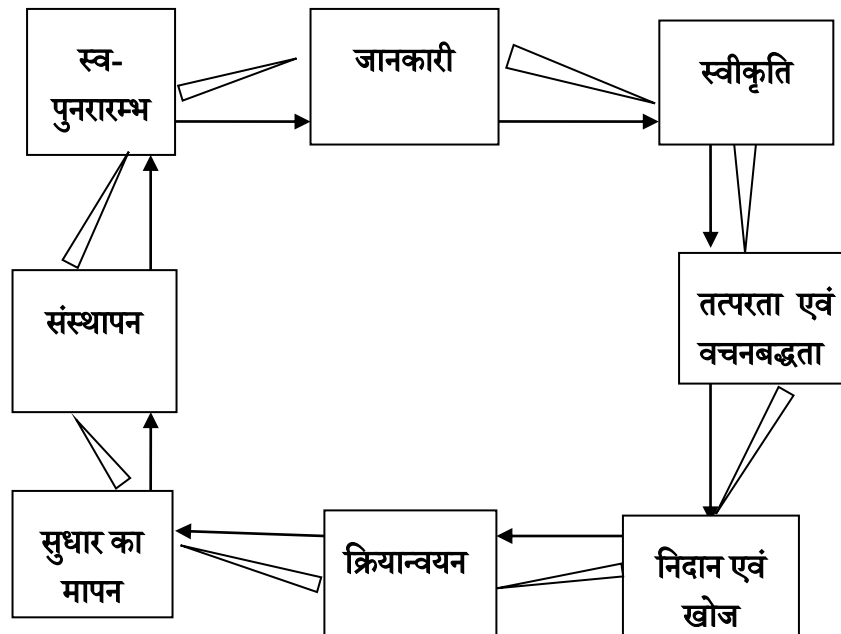
4.5.3 संगठनात्मक विकास की प्रक्रिया (Process of Organizational Development):

संगठनात्मक विकास एक जटिल प्रक्रिया है जो कई वर्षों तक चलती है। अमेरिका के वृहद् उपक्रम जेनेरल मोटर्स द्वारा अपनाई गयी प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार है –

- **जानकारी (Awareness):** संगठन के विकास के प्रथम चरण में कई बातों की जानकारी की जाती है – जैसे – संगठनात्मक समस्याएं, संगठन के विकास का स्तर, मानवीय सन्तुष्टि, मानवीय संसाधनों का उपयोग आदि।
- **स्वीकृति(Acceptance):** इस चरण में संगठन की प्रकृति, संगठनात्मक प्रबंध के वैकल्पिक तरीकों तथा मानवीय एवं संगठनात्मक सम्भावनाओं की गहराई एवं विस्तार को स्वीकार किया जाता है।
- **कार्य के लिये तत्परता एवं वचनबद्धता (Readiness and Commitment):** परिवर्तन प्रक्रिया के लिये संगठन के सदस्यों में तत्परता एवं वचनबद्धता उत्पन्न की जाती है।
- **निदान एवं खोज (Diagnosis and Search):** इस चरण में यह जाना जाता है की समस्या के वास्तविक कारण क्या हैं, संगठन का निष्पादन कैसा होना चाहिए, संगठन के लक्ष्यों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप सुधार की व्यूह रचना क्या होनी चाहिये।
- **नये व्यवहार की क्रियान्वति (Application of New Behaviour) :** इस चरण में कार्य करने के नये तरीकों का प्रयोग करने, संगठनात्मक प्रक्रियाओं में सुधार करने तथा लक्ष्यों व वैयक्तिक आवश्यकताओं में एक सुसंगति खोजने की दृष्टि से नये व्यवहार की क्रियान्वति की जाती है।
- **सुधार का मापन (Measurement of Improvement):** इस चरण में नये व्यवहार के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों का मापन किया जाता है।
- **संस्थापन (Institutionalization):** इस चरण में संगठन में मानव संसाधन, प्रबंध के सिद्धान्तों तथा संगठन विकास की व्यूह रचनाओं एवं तकनीकों को संस्थापित एवं समाविष्ट किया जाता है।

- **स्व-पुनरारम्भ (Self Renewal):** यह वह प्रणाली है जिसके द्वारा संगठन की समस्याओं की निरंतर जानकारी बनी रहती है ताकि समाधान के लिये संगठन विकास की प्रक्रिया पुनः आरंभ की जा सके। यह स्व नवीनीकरण की प्रक्रिया है जिसके द्वारा संगठन की निरंतरता को बनाये रखा जा सकता है। उपर्युक्त विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संगठनात्मक विकास किसी संगठन को एक प्रणाली, व्यवहार्य तथा वातावरण के साथ समायोज्य बनाने का प्रयास है।

संगठन विकास की प्रक्रिया का रेखाचित्र



4.6 कार्यक्रम मूल्यांकन एवं पुनरीक्षण तकनीक या पर्ट (Programme Evaluation And Review Technique):

इसका विकास 1958 में पोलेरिस परियोजना के लिये अमेरिकन जल सेना के विशेष परियोजना अधिकारी एवं लॉकहीड एयरक्राफ्ट निगम द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था। पर्ट परियोजना प्रबंध की महत्वपूर्ण तकनीक है। यह परियोजना के अनुगमन (Sequencing), सारणीयन Scheduling) तथा समन्वय से संबंधित समस्याओं को हल करने की एक अत्यंत प्रभावी तकनीक है। जब परियोजनाओं को अनेक चरणों या उपकार्यों में पूरा किया जाता है तो ऐसी दशा में उनके उपकार्यों का विशिष्ट अनुक्रम तैयार करना, प्रत्येक

उपकार्य में लगने वाले समय का निर्धारण करना तथा समस्त कार्यों को मूल परियोजना के साथ जोड़ना, अंतर्संबंधित करना एवं समन्वित करना आवश्यक हो जाता है। जब किसी परियोजना की समस्त क्रियाएँ एवं घटनायें तार्किक एवं अनुक्रमिक रूप से परस्पर सम्बन्ध कर दी जाती हैं तो वे तंत्र को जन्म देती हैं।

इस प्रकार पर्ट नियोजन एवं नियंत्रण की एक ऐसी तकनीक है जो किसी पूर्व निर्धारित परियोजना या अनुसूची को पूरा करने में तन्त्र विश्लेषण(Network analysis) का प्रयोग करती है। यह तकनीक किसी परियोजना के क्रियान्वयन में आने वाली रुकावटों को दूर करने तथा परियोजना को समय पर पूरा करने में सहायक होती है।

4.6.1 पर्ट के चरण(Steps of PERT):

पर्ट की तकनीकों के प्रयोग हेतु निम्न तकनीकों को अपनाना पड़ता है -

I) क्रियाओं एवं घटनाओं की पहचान (Identification of activities and events): क्रिया एक ऐसी परिचालन है जिसमें समय एवं संसाधनों का उपयोग किया जाता है। इसमें समयबद्धता का तत्व होता है। घटना उस समय बिन्दू को कहते हैं जब कोई क्रिया प्रारंभ होती है या समाप्त होती है। नीचे दिये गये चित्र में पर्ट की प्रक्रिया को दर्शाया गया है। इसमें क्रिया को तीर के निशान से और घटना को गोले द्वारा दिखाया गया है।

II) क्रियाओं का अनुक्रम तय करना (Determining the sequence of activities): क्रिया की पहचान होने के बाद तर्कयुक्त ढंग से क्रियाओं का अनुक्रम निर्धारित किया जाता है। अनुक्रम तय होने के फलस्वरूप क्रियाओं के अंतर्संबंध स्पष्ट हो जाते हैं। इससे ज्ञात हो जाता है कि कौन कौन से कार्य एक साथ किये जाने हैं तथा कौन कौन से कार्य पूर्ववर्ती तथा कौन कौन से कार्य पश्चवर्ती हैं।

III) समयानुमानों का पता लगाना (Finding time estimates): इस चरण में विभिन्न समयानुमानों पर विचार करके अपेक्षित समय का निर्धारण किया जाता है। सामान्यता तीन प्रकार के अनुमान लगाये जाते हैं:

- **आशावादी समयानुमान a (Optimistic time estimates):** यह अनुमान न्यूनतम अनुमानित समय है जो किसी क्रिया को पूरा करने में अवश्य लग जाता है चाहे परिस्थितियाँ कितनी भी अनुकूल क्यों न हो।
- **निराशावादी समयानुमान b (Pessimistic time estimates):** यह वह अधिकतम अनुमानित समय है जिसमें समस्त परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के बाद भी क्रिया पूरी कर ली जायेगी।
- **अधिकतम प्रायिक समयानुमान m (Most likely time estimate):** यह वह अनुमानित समय है जो सामान्य अवस्था में किसी क्रिया के पूरा होने में लगेगा।
- इन समयानुमानों से बिटा प्रायिकता के आधार पर प्रत्येक क्रिया के किये प्रत्याशित समय निकला जाता है जिसे प्रत्याशित क्रिया समय (Expected Activity Time-**te**) निकला जाता है। प्रत्याशित क्रिया समय को द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इसे ज्ञात करने हेतु निम्नांकित सूत्र है –

$$te = (a + 4m+b)/6$$

IV) परियोजना अनुसूचियन (Project Scheduling): इस चरण में जिन बातों का निर्धारण किया जाता है, वे निम्न प्रकार हैं:

- परियोजना के पूर्ण होने का समय
- क्रांतिक क्रियाएँ जो निश्चित समय पर पूर्ण की जानी हैं।
- अक्रान्तिक क्रियाओं का अनुमति योग्य विलंब जिसके कारण सम्पूर्ण परियोजना के पूर्ण होने पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, सभी घटनाओं एवं क्रियाओं में शैथिल्य समय की गणना करना।

IV) तंत्र का निर्माण करना (Formulating the network): तंत्र के निर्माण के लिये परियोजना की सभी क्रियाओं में अंतर्संबंध स्थापित किया जाता है। इसके पश्चात् सभी क्रियाओं को एक चार्ट में प्रदर्शित करते हुये तंत्र तैयार किया जाता जाता है।

VI) चरम पथ का निर्धारण (Determination of critical path): यह चरम पक्ष या क्रांतिक मार्ग सबसे लम्बा मार्ग होता है। यह क्रांतिक घटनाएँ या क्रियाएँ वे होती हैं जिनमें शीघ्र घटित होने वाला समय तथा विलंबित घटना समय समान होता है। शीघ्र घटित होने वाला समय वह होता है जब घटना अस्तित्व में आती है तथा विलंबित घटित समय वह है जबकि कार्य समपन्न हो जाता है।

VII) समीक्षा एवं नियंत्रण (Monitoring and Control): परियोजना प्रारंभ कर दी जाने के पश्चात् समय समय पर उसकी समीक्षा की जाती है। इस चरण में निम्न कार्य किये जाते हैं –

- सभी क्रियाओं तथा उसके निष्पादन समयों की समीक्षा करना तथा पूर्व निर्धारित योजना के साथ उसकी तुलना करना।
- मूल योजना से होने वाले सभी विचलनों की पहचान करना।
- क्रांतिक क्रियाओं में विलंब की पहचान करके पुनः योजना बनाना तथा सम्पूर्ण तंत्र का पुनः निर्माण करना।
- संसाधनों को क्रांतिक क्रियाओं की ओर हस्तांतरित करना जिससे परियोजना के निर्माण कार्य के संभावित विलंब को दूर किया जा सके।

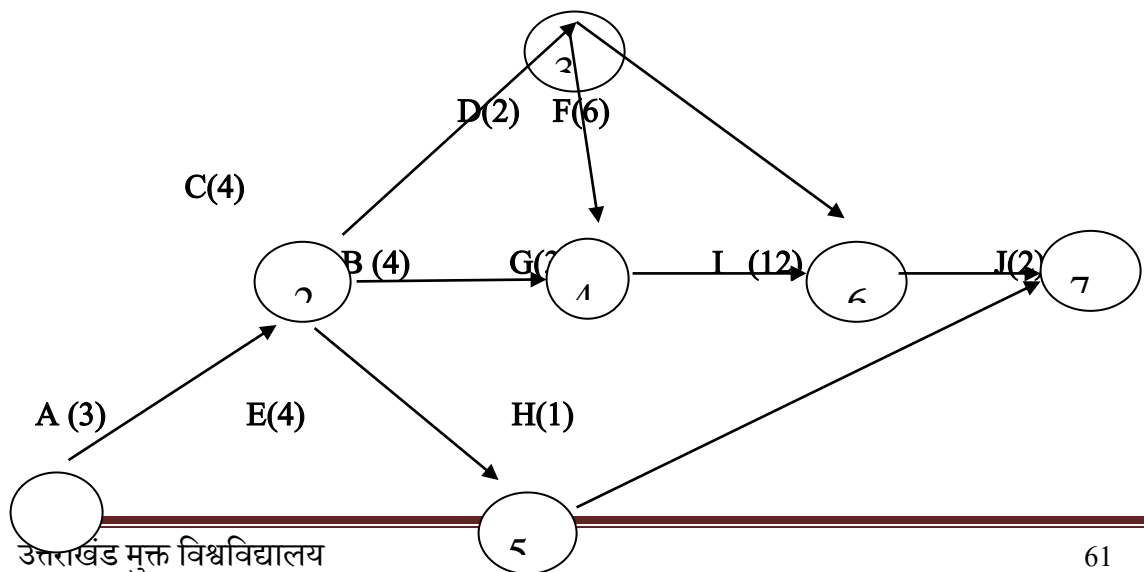
4.6.2 PERT तंत्र का निर्माण (Formulation of PERT Network):

नीचे दिये गये तालिका में किसी परियोजना की क्रियाओं और अप्रत्याशित क्रिया समय को दिया गया है।

Activity	Expected Activity Time
A	3
B	4
C	4
D	2
E	4
F	6
G	3
H	1
I	12
J	2

उपर्युक्त तालिका में निर्धारित क्रियाओं के आधार पर एक तंत्र तैयार किया जाता है ताकि परियोजना को पूर्ण करने में विभिन्न मार्गों उनमें लगने वाले अनुमानित समय का ज्ञान हो सके। नीचे दिये गये रेखा चित्र में पर्ट नेटवर्क को दिखाया गया है। इसमें घटनाओं को गोले से और क्रियाओं को दो गोलों के बीच तीर से दिखाया गया है। क्रियाओं की अनुमानित समयावधि सप्ताहों में अंकित किये गये हैं। घटनाओं को संख्याओं द्वारा दर्शाया गया है। इस तंत्र का प्रारंभिक बिन्दू घटना संख्या 1 है और अंतिम बिन्दू घटना संख्या 8 है।

पर्ट तंत्र (PERT Network)



उपर्युक्त नेटवर्क में प्रथम घटना से अंतिम घटना तक पहुँचने के निम्न चार मार्ग हैं:

मार्ग 1	1-2-3-4-6-7-8	26
मार्ग 2	1-2-3-6-7-8	27
मार्ग 3	1-2-4-6-7-8	24
मार्ग 4	1-2-5-7-8	10

उपर्युक्त चार मार्गों में से सबसे लम्बी अवधि वाला मार्ग 2 क्रांतिक मार्ग है। यह संकट और नाजुक मार्ग है इस पर अधिक समय एवं संसाधनों का विनियोजन करना पड़ता है।

4.6.3 पर्ट के लाभ एवं सीमायें(Advantages and Limitations of PERT):

इस तकनीक के निम्नांकित लाभ हैं:

I) **अग्रिम क्रिया योजना:** इस तकनीक को अपनाने के किये एक अग्रिम योजना तैयार करनी पड़ती है। इससे योजना के विभिन्न पहलूओं पर विचार करना संभव हो जाता है।

II) **समय एवं लागत की निश्चितता:** पर्ट के प्रयोग द्वारा परियोजना के पूर्ण होने में लगने वाला संभावित समय और लागत को सुनिश्चित किया जाता है। इससे अनिश्चितताओं पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

III) **प्रमाप निर्धारण:** पर्ट के द्वारा परियोजना के प्रत्येक मेल बिन्दू को पूरा करने में लगने वाले समय तथा आर्थिक व्यय के रूप में प्रमाप निश्चित किये जाते हैं।

IV) **श्रेष्ठ निर्णय:** इस तकनीक के अंतर्गत आशावादी, निराशावादी तथा अधिकतम संभावित समय के अनुमानों के आधार पर श्रेष्ठतर निर्णय लिये जा सकते हैं।

V) **योजना का मूल्यांकन एवं संशोधन:** पर्ट के द्वारा समय एवं लागत के सन्दर्भ में मूल्यांकन करना सरल हो जाता है। मूल्यांकन के आधार ओर परियोजना में निश्चित सुधार किया जा सकता है।

VI) विलंबों एवं शैथिल्य पर नियंत्रण: इस तकनीक के द्वारा प्रबंधक यह जान सकते हैं कि कार्यों में विलंब का वास्तविक कारण क्या है? वे कार्य में शिथिलता और विलंब को दूर करने के लिये आवश्यक कदम भी उठा सकते हैं।

उपर्युक्त लाभों के अतिरिक्त की सीमाएं भी हैं जिनका उल्लेख निम्नांकित हैं:

I) लागत समस्याएँ: पर्ट के उपयोग में लागत सम्बन्धी कई समस्याएँ जैसे- लागतों की अनिश्चितता, लागत परिवर्तन, लागत बंटन आदि का सामना करना पड़ता है।

II) समयानुमानों पर निर्भरता: पर्ट की सफलता बहुत कुछ सीमा तक समयानुमानों की शुद्धता एवं विश्वसनीयता पर निर्भर करती है।

III) आर्थिक भार: पर्ट तकनीक का प्रयोग करना खर्चीला होता है क्योंकि तंत्र निर्माण तथा अन्य क्रियाओं पर नियंत्रण रखने के लिये विशेषज्ञों की नियुक्ति आवश्यक हो जाती है।

IV) प्रशासनिक सत्ता में कमी: इस तकनीक के प्रयोग में विशेषज्ञों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। अतः प्रशासकों की सत्ता में कमी हो जाती है।

V) जटिलता: क्रियाओं तथा घटनाओं का तंत्र तैयार करना एक जटिल कार्य है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. संगठनात्मक विकास व्यक्तियों को परिवर्तन के लिये तैयार करने तथा करने की प्रक्रिया है।
2. संगठनात्मक विकास शब्दावली के प्रवर्तक..... हैं।
3. पर्ट तकनीक का निर्माण के लिये में किया गया था।
4. यह परियोजना के अनुगमन, तथा समन्वय से संबंधित है।
5. पर्ट तकनीक में क्रिया एक ऐसा परिचालन है जिसमें और का उपयोग किया जाता है।
6. पर्ट तकनीक में प्रत्याशित क्रिया समय ज्ञात करने का सूत्र..... होता है।

4.7 सारांश (Summary)

इस इकाई के अंतर्गत हमने यह जाना कि प्रशासन का समग्र स्वरूप रूपांतरित हो रहा है। नवीन प्रवृत्तियाँ इसे एक नई दिशा और आधार भूमि प्रदान कर रहीं हैं। प्रणाली उपागम, निर्णयन, संगठनात्मक विकास एवं पर्ट – इन सभी ने प्रशासन को गत्यात्मकता प्रदान की हैं। प्रणाली उपागम ने प्रशासन को एक व्यवस्था का रूप दिया

है। प्रणाली के मुख्य घटक निर्णयन करना ही प्रशासकों की सार्वजनिक पहचान है। यह उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव से संबंधित है। संगठनात्मक विकास की अवधारणा शीर्ष प्रबंध के द्वारा समूचे संगठन में नियोजित परिवर्तन लेन की प्रक्रिया है ताकि संगठनात्मक प्रभावशीलता को सुधार जा सके। पर्ट तकनीक में क्रियाओं और संबंधित प्रमुख चरणों या घटनाओं के सम्पूर्ण तंत्र का एकरूपन निहित है जो उद्देश्यों की प्राप्ति को अधिकाधिक संभव बनाता है।

4.8 शब्दावली

प्रणाली: अन्तः क्रियाशील तंत्रों का संकलन

निर्णयन: प्रक्रिया जिसके द्वारा सर्वोत्तम विकल्प का चयन किया जाता है।

संगठनात्मक विकास: एक दीर्घकालीन एवं संगठन व्यापी प्रक्रिया जिसका उद्देश्य संगठन के प्रभावशीलता, गत्यात्मकता और परिपक्वता में वृद्धि करना है।

पर्ट: नियोजन एवं नियंत्रण की एक ऐसी तकनीक है जो किसी पूर्व निर्धारित परियोजना या अनुसूची को पूरा करने में तन्त्र विश्लेषण (Network analysis) का प्रयोग करती है।

क्रांतिक मार्ग: सर्वाधिक लम्बे समय वाला मार्ग।

4.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न. 1

1. सम्पूर्ण 2. सामान्य 3. बहुचरणीय 4. विकल्प 5. वातावरण 6. स्थिति परीक्षण एवं समस्या की परिभाषा

अभ्यास प्रश्न. 2

1. परिवर्तन का प्रबंध 2. रोबर्ट ब्लेक, हेर्बर्ट शेफर्ड और जेनी माउटन 3. पोलेरिस परियोजना, 1958

4. सारिणीयन 5. समय, संसाधन 6. $(a + 4m + b)/6$

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Beckhard, R. *Organisational Development: Strategies and Models*. Reading, Mass, Addition – Wesley, 1969.

Bennis, W.G. *Organisational Development: Its Nature, Origin and Perspectives*. Reading, Mass, Addition – Wesley, 1969.

Stonner, J and Charles Wankel . Management. Prentice Hall of India, New Delhi, 1988.

Joseph L.Massie. *Essentials of Management*. Prentice Hall of India, New Delhi, 1987.

.Koontz and Wehrich. *Management*, McGraw-Hill, NewYork, 1988.

4 . 11 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रणाली से आप क्या समझते हैं? प्रशासन के प्रणाली उपागम की विशेषताओं पर प्रकाश डालें ।
2. प्रणाली की कार्य विधि को स्पष्ट करें ।
3. निर्णयन प्रक्रिया एक बहुचरणीय प्रक्रिया है । कैसे ?
- 4 संगठनात्मक विकास की अवधारणा को अपने शब्दों में लिखें ।
5. पर्ट तकनीक की रेखा चित्र सहित विवेचना कीजिये ।
6. पर्ट तकनीक के लाभ और हानियों पर प्रकाश डालें ।

इकाई 5 . नेतृत्व का अर्थ एवं प्रकृति और नेतृत्व के सिद्धान्त

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 नेतृत्व: अर्थ एवं प्रकृति

5.4 नेतृत्व के सिद्धान्त

5.5 निबंधात्मक प्रश्न

5.6 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

कोठारी कमीशन (1964-66) के अनुसार भारत के भविष्य का निर्माण इसकी कक्षाओं में हो रहा है। यह कथन पूर्णरूपेण सत्य है, वास्तव में किसी भी राष्ट्र के विकास में शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। राष्ट्रीय एवं सामाजिक विकास हेतु शिक्षा प्रदान करने का कार्य मुख्यतः शैक्षिक संस्थाओं द्वारा किया जाता है एवं शैक्षिक उद्देश्यों की प्रभावी प्राप्ति के लिये उक्त संस्थाओं/संगठनों में कुशल नेतृत्व की आवश्यकता अति महत्वपूर्ण हो जाती है। कुशल नेतृत्व ही शिक्षण संस्थाओं में अधिकाधिक मानव संसाधन विकास करते हुए सीमित व्यय, साधन एवं समय में अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल होता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- शैक्षिक संस्थाओं में नेतृत्व के महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- नेतृत्व के अर्थ एवं प्रकृति से परिचित हो सकेंगे।
- नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।

5.3 नेतृत्व: अर्थ एवं प्रकृति

नेतृत्व एक मूल्य-परक अवधारणा है। परम्परागत अवधारणा के अनुसार नेतृत्व एक व्यक्तिगत योग्यता है। नेता आलौकिक शक्तियों द्वारा बनते थे जिनमें मानव-मस्तिष्क को पढ़ने की योग्यता होती थी। वर्तमान समय में नेतृत्व को एक व्यक्तिगत योग्यता के रूप में देखा जाता है। वर्तमान परिभाषाओं में नेतृत्व को एक समाज-

प्रभावित प्रक्रिया माना गया है। नेतृत्व, किसी दी हुई परिस्थिति में निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समूह-क्रियाओं को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। यह प्रबंधक की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह अपने सहयोगियों को पूर्ण उत्साह एवं आत्म-विश्वास के साथ कार्य करने को प्रेरित करता है। संक्षेप में, नेतृत्व समूह उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों की क्रियाओं को प्रभावित करने वाली क्रिया है। नेतृत्व वह प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत नेता अपने सहयोगियों को एक निश्चित ढंग से कार्य करने का आदेश देता है। समूह के सदस्यों को सहयोगपूर्ण ढंग से कार्य करने हेतु दिशा निर्देश देता है। यह एक अन्तर्व्यक्तिक सम्बन्ध है, जिसमें दूसरे व्यक्ति नेता के आदेशों को मानते हैं क्योंकि वे उन्हें मानना चाहते हैं न कि उनके ऊपर मानने का दबाव डाला जाता है। एक नेता का कार्य ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना होता है जिसमें समूह प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य कर सके। एक अच्छा नेता वही होता है जो ऐसा समूह तैयार करे जो विभिन्न परिणाम दे सके। नेता का यह गुण सामाजिक समस्या-समाधान का जटिल रूप प्रदर्शित करता है। सामान्यतया नेतृत्व एवं प्रबंधन दोनों को एक-दूसरे से जुड़ा माना जाता है। ये दोनों आपस में जुड़े तो होते हैं, परन्तु प्रबंधन में जहाँ कुशलता, नियोजन, कागजी-कार्य, प्रणाली, नियामक, नियंत्रण एवं संगतता का गुण मौजूद होता है, वहीं नेतृत्व गत्यात्मकता जोखिम लेना, सृजनात्मकता, परिवर्तन, दूरदर्शिता आदि गुणों से जुड़ा रहता है। प्रबंधक जहाँ प्रशासक, नियामक, नियंत्रक, अल्पकालीन विचारों वाला होता है वही नेता सृजनात्मक, प्रेरणादायी, नवाचारी एवं दीर्घकालीन विचारों वाला होता है। प्रबंधक एवं नेता दोनों ही आपस में जुड़े रहते हैं परन्तु उनके कार्यों में भिन्नता पायी जाती है।

नेतृत्व: अर्थ, परिभाषाएँ:

नेतृत्व समूह अथवा संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्यों को प्रभावित करने की योग्यता है। नेतृत्व, मुख्य रूप से व्यवहार को प्रभावित करने वाली सतत् प्रक्रिया है। एक नेता समूह में ही साँस लेता है और समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरणा प्रदान करता है। यह गुण कुछ करने को दर्शाता है न कि पहले से मौजूद गुण को। नेतृत्व को समझने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं का अध्ययन आवश्यक है -

“नेतृत्व एक ऐसी क्रिया है जो व्यक्तियों को इस प्रकार प्रभावित करे कि वे अपनी इच्छा से सामूहिक उद्देश्यों के लिए प्रयास करें।” (जॉर्ज आर0 टैरी, 1954)

“Leadership is an activity of influencing people to strive willingly for group objectives.” *George R. Terry, 1954*

“नेतृत्व एक परिस्थिति में प्रयुक्त किया गया तथा विशिष्ट लक्ष्य अथवा लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर निर्देशित पारस्परिक प्रभाव है।” (रॉबर्ट टैन्नबांम, 1959)

“Leadership is an interpersonal influence exercised in a situation and directed towards the attainment of a specialized goal or goals.” *Robert Tennunbaun, 1959*

समान लक्ष्यों की प्राप्ति में व्यक्तियों को अनुगमन करने के लिए प्रभावित करना नेतृत्व है।” (कून्टज़ एवं डोनेल, 1959)

“Leadership is influencing people to follow in the achievement of a common goal.” *Koontz and Donnell, 1959*

इस प्रकार परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट होता है कि नेतृत्व समूह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सदस्यों को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। नेतृत्व का विचार अपने आप में कला और विज्ञान दोनों है। नेतृत्व कला इस रूप में है कि इसमें परिस्थितियों को समझ कर उसके अनुरूप समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्यों के व्यवहारों को प्रभावित करने का कौशल मौजूद होता है एवं विज्ञान इस रूप में है कि ‘क्या करना है’, यह जानने के अतिरिक्त ‘कब’, ‘कहाँ’, ‘कैसे’, करना है इसका ज्ञान भी नेता को होता है। कभी-कभी परिस्थितियों के मापन एवं क्रियाओं की पूर्णता हेतु नेतृत्व नियमबद्ध, स्पष्ट एवं तर्कसंगत हो जाता है और कभी-कभी भावनात्मक रूप भी धारण कर लेता है, क्योंकि मानव प्रकृति भावनाओं से अछूती नहीं रह सकती। अतः नेतृत्व वह सामाजिक अवधारणा है जो अन्तः प्रक्रियात्मक विशेषताओं एवं गुणों पर बल देती है।

शैक्षिक नेतृत्व की प्रकृति

नेतृत्व को समझने के लिए नेतृत्व की प्रकृति भी जाननी आवश्यक है। प्रकृति के आधार पर नेतृत्व विज्ञान भी है, जो यह स्पष्ट करता है कौन सी क्रियाएँ कब, कहाँ, कैसे करनी है तथा उन क्रियाओं के सम्पादन में नियमबद्धता, क्रमबद्धता, तर्क-संगतता, कारण-परिणाम सम्बन्धों में एकरूपता आदि गुणों की उपस्थिति आवश्यक होती है। नेतृत्व कला इस रूप में है कि इसमें परिस्थितियों के अनुरूप सदस्यों के व्यवहारों को प्रभावित करने, उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाने एवं सदस्यों को भावनात्मक सहयोग देने का कौशल उपस्थित होता है। नेतृत्व की प्रकृति अधिक स्पष्ट रूप से समझने हेतु निम्नलिखित विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक है -

1. समूह-क्रिया विकसित करना (To develop team-work): समूह क्रिया हेतु तीन प्रमुख तत्व हैं- नेता, सहयोगी एवं वातावरण। ये कारक अपने आप में स्वतंत्र रहते हैं। इन्हें समूह-उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आपस में क्रिया योग्य बनाना नेता का उत्तरदायित्व होता है। वह ही कर्मचारियों की योग्यताओं, रुचियों को जानकर उनके अनुरूप उन्हें कार्य प्रदान करता है। कर्मचारियों की जिज्ञासाओं को उत्साहित करके एवं धोखेबाजी एवं कपटी व्यवहारों पर नियंत्रण लगाकर नेता एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करता है। वह ही कर्मचारियों में समूह भावना को उजागर करके उन्हें एक समूह (group) के रूप में कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

2. कर्मचारियों का प्रतिनिधि (Representative of subordinates): नेतृत्व में अपने अधिनस्थ कर्मचारियों के प्रतिनिधि होने का गुण मौजूद रहता है। रेनिस लिंकर्ट ने नेता को ‘संयोजक कड़ी’ कहा है। ये सम्पूर्ण संगठन

को समन्वित करने का कार्य करता है। एक प्रतिनिधि के रूप में अपने अधिनस्थों की माँगों को उच्च प्रबंधन स्तर तक पहुँचाता है।

3. उपयुक्त परामर्श देना (To provide appropriate counselling): अक्सर पदोन्नति, आय वृद्धि, प्रदर्शन स्तर एवं उपयुक्त स्थान पर स्थानान्तरण आदि बातों को लेकर कर्मचारी दबाव में रहते हैं और कई प्रकार की भावनात्मक समस्याओं से गुजरते हैं। ये बाधाएँ कर्मचारियों को उनके मार्ग से भटका देती है। ऐसी परिस्थितियों में नेता उनकी परेशानियों की सुनता है एवं उनके कार्य में आने वाली इन बाधाओं को दूर करने हेतु उन्हें परामर्श देता है और उन्हें मानसिक रूप से स्वस्थ बनाता है।

4. शक्तियों का सही उपयोग करना (To use power properly): नेता से अपेक्षित उद्देश्यों की प्रभावपूर्ण प्राप्ति के लिए नेता के पास ऐसी शक्तियाँ एवं अधिकार होते हैं जिनके माध्यम से वह कर्मचारियों से सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने हेतु उनकी क्रियाओं को प्रेरित कर सकता है। यदि आधिनस्थों द्वारा नेता की आज्ञा का पालन न किया जाए तो नेतृत्व प्रभावहीन हो जाता है। इसलिए नेता द्वारा ऐसी शक्तियों का उपयोग किया जाता है जिनके अधीन आधिनस्थों द्वारा नेता की आज्ञा और आदेशों का इच्छा से पालन किया जाता है।

5. समय का सदुपयोग करना (To use time well): समय मूल्यवान है लेकिन प्रबंधन में अक्सर उनका सही उपयोग नहीं हो पाता है। एक नेता समय-प्रबंधन चार्ट, तकनीक सूची आदि के प्रयोग द्वारा अपने समय का उत्पादकतापूर्ण प्रयोग करता है। सूचना, सत्य एवं सांख्यिकी आगतों के प्रभावपूर्ण संयोजन द्वारा समय का निर्णय ले पाता है।

6. प्रभावपूर्णता लाने का प्रयत्न करना (To strive for effectiveness): प्रभावपूर्ण ढंग से लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु नेता कई प्रकार के निर्णय लेता है। इस सन्दर्भ में लक्ष्य तक समय से पहुँचने के लिए अनेक सहायक क्रियाओं को अपनाता है। नेतृत्व के अन्तर्गत आधिनस्थों द्वारा पहल करने को प्रोत्साहन देना, अच्छे प्रदर्शन के लिए पुरस्कार की व्यवस्था, आधिनस्थों से घुलना-मिलना और आवश्यकतानुसार अनुशासन एवं नियंत्रण लगाना आदि क्रियाओं को अपनाया जाता है।

7. कर्मचारियों को प्रेरित करना (To inspire employees): एक नेता अपने कर्मचारियों में उच्च स्तर के प्रदर्शन की प्रवृत्ति विकसित कर सकता है। वह उनके दृष्टिकोणों को उच्चता प्रदान करता है। कार्य करने के सही तरीके की पहचान कराकर नेता, कर्मचारियों को संगठन के लिए अपना श्रेष्ठ देने में मदद करता है।

8. सहयोग विकसित करना (To develop cooperation): एक गतिशील नेता समूह में साँस लेता है। वह सदस्यों के व्यवहारों को इस प्रकार प्रभावित करता है कि वे संगठन के उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु तत्पर हो जाते हैं। वह उन्हें एहसास दिलाता है कि योजनाओं को कार्य रूप में परिणित करने पर वे पुरस्कार प्राप्त कर सकते हैं। इस तरह वह कर्मचारियों में समूह-भावना का विकास करता है, ताकि वे एक समूह के रूप कार्य कर सकें।

समूह-क्रियाओं हेतु नेतृत्व आवश्यक अवधारणा है। एक सुदृढ़ नेतृत्व के बिना सहयोगपूर्ण क्रियाएँ असम्भव हैं। नेतृत्व ही समूह को एक चरित्र प्रदान करता है और विभिन्न स्तरों पर समन्वित प्रयासों का मार्ग दर्शाता है।

9. विश्वास जगाना (To Create confidence): संगठन में कर्मचारी अक्सर भावनात्मक समस्याएँ झेलते हैं। कुछ कार्य को करने की अयोग्यता, पदोन्नति की चिन्ता, अपनी कुशलताओं का और विकास करना एवं साथियों से घुलना-मिलना आदि कारणों की वजह से वे कुण्ठित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में नेता ही उनको परामर्श देता है, उनके मार्ग की बाधाओं को दूर करने में सहयोग करता है एवं कर्मचारियों में विश्वास जगाता है। वह क्षमताओं को वास्तविकताओं में रूपान्तरित करता है।

10. कार्य हेतु उपयुक्त वातावरण प्रदान करना (To provide good working climate): नेतृत्व द्वारा ही कार्य हेतु एक स्वस्थ वातावरण प्रदान किया जाता है, जहाँ व्यक्ति उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु खुशी से कार्य करते हैं। नेता ही आवश्यक परिवर्तन लाने की पहल करता है और कर्मचारियों के व्यवहारों में एकरूपता लाता है। समय एवं धन के न्यायपूर्ण प्रयोग द्वारा वह कार्यों की प्राथमिकता तय करता है। एक नेता ही कर्मचारियों में कल्पना, दूरदर्शिता, उत्साह एवं पहल करने की योग्यता विकसित करता है।

5.4 नेतृत्व के सिद्धान्त (Theories of Leadership)

विस्तृत रूप से नेतृत्व के सिद्धान्त तीन रूपों में वर्गीकृत किए जाते हैं- गुण सिद्धान्त (Trait Theory), व्यावहारात्मक सिद्धान्त (Behavioural Theory) एवं परिस्थितियात्मक सिद्धान्त (Situational Theory)। गुण सिद्धान्त के अनुसार नेतृत्व व्यक्तित्व गुणों का संयोजन है। व्यावहारात्मक सिद्धान्त के अनुसार नेता के व्यक्तिगत व्यवहार प्रभावी नेतृत्व से सम्बन्धित होते हैं। परिस्थितियात्मक सिद्धान्त के अनुसार कुछ निश्चित परिस्थितियात्मक कारक प्रभावी नेतृत्व शैली निर्मित करते हैं। इन सिद्धान्तों को अधिक स्पष्ट ढंग से समझने के लिए इनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है-

1. गुण सिद्धान्त (Trait Theory): यह नेतृत्व का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित विश्लेषण करने वाला सिद्धान्त है। जो कि 1960 तक ही मान्य रहा इस सिद्धान्त की मुख्य अवधारणा यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति में नेतृत्व के गुण उपस्थित नहीं होते हैं। वे व्यक्ति जिनमें नेतृत्व के निश्चित गुण/विशेषताएँ होती हैं वे ही नेतृत्व के क्षेत्र में सफल हो सकते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार नेता के व्यक्तिगत गुण ही सफल नेतृत्व की चाबी हैं। यह सिद्धान्त नेता के जन्मजात होने की मान्यता को नकारता है। गुण सिद्धान्त के अनुसार, नेताओं में कुछ संख्या में गुणों के आधार पर उनके अनुयायियों द्वारा भिन्नता की जाती है और ये गुण समय के साथ अपरिवर्तित रहते हैं। गिसेली ने सामान्य रूप से स्वीकृत गुणों की एक सूची निर्मित की है जो नेतृत्व को प्रभावशाली बनाते हैं। ये सूची निम्नलिखित है-

व्यक्तित्वगुण (Personality Traits)

योग्यताएँ (Abilities)	व्यक्तित्वगुण (Personality Traits)	प्रेरक (Motivators)
पर्यवेक्षण योग्यता	स्व-आश्वासन	व्यावसायिक उपलब्धि की आवश्यकता
बुद्धिमत्ता	निर्णायक	आत्म प्रकाशन
पहल करना	परिपक्वता	उच्च वित्तीय पुरस्कार
	कार्य-वर्ग सजातीयता	कार्य सुरक्षा

कीथ डेविस ने महान सफल नेताओं के निम्नलिखित चार गुण बताए हैं:

बुद्धिमत्ता (Intelligence): नेता में अपने अनुयायियों से अधिक बुद्धिमत्ता होती है।

सामाजिक परिपक्वता (Social maturity): नेता भावनात्मक रूप से परिपक्व होते हैं और एक उच्च कार्य स्तर रखते हैं। वे जीत से न बहुत खुश होते हैं और हानि से बहुत दुःखी। उनमें कुण्ठा सहन करने की उच्च शक्ति होती है।

अन्तःप्रेरणा एवं उपलब्धि चालक (Inner motivation and achievement drive): नेता में उपलब्धियों को प्राप्त करने की चाहत होती है। एक उपलब्धि प्राप्त करने के बाद दूसरी को प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं।

मानवीय सम्बन्ध अभिवृत्ति (Human relations attitude): नेता लोगों के प्रति आदर भाव रखते हैं और जानते हैं कि कौन से कार्य उन्हें किस प्रकार करने हैं ताकि सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न न हो।

आलोचना: गुण सिद्धान्त की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

(क) व्यक्तित्व गुणों की सूची बहुत लम्बी है। यद्यपि नेतृत्व हेतु व्यक्तित्व के सौ से अधिक गुणों की पहचान की गई है, परन्तु इनमें संगतता का अभाव है।

(ख) प्रभावी नेतृत्व हेतु महत्वपूर्ण गुणों के सम्बन्ध में शोधकर्ताओं में मतभेद पाया जाता है। एक सफल नेता हेतु आवश्यक गुणों की कोई सार्वभौमिक सूची नहीं है।

(ग) सफल नेतृत्व हेतु गुणों की पहचान एवं मापन में बहुत कठिनाई आती है। इनकी पहचान एवं मापन हेतु उपलब्ध उपकरणों को भी सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। उदाहरणतः कुछ मनोवैज्ञानिक गुणों जैसे बुद्धिमत्ता या पहल करने की शक्ति आदि केवल व्यवहारों में परिलक्षित होते हैं।

(घ) प्रभावी नेतृत्व केवल गुणों द्वारा संभव नहीं है। इसमें नेता के व्यवहारों एवं परिस्थितियों का भी बहुत बड़ा हाथ होता है।

(ङ) नेतृत्व कौशल में संगठन में किए जाने वाले कार्यों की भिन्नता के अनुरूप विभिन्नता पायी जाती है। एक नेता संगठन में तीन भिन्न प्रकार के कौशलों- तकनीकी, मानवीय एवं प्रशासकीय का प्रदर्शन करता है और ये गुण सभी प्रबन्धकीय स्तर पर समान रूप से वितरित हो अथवा पाए जाएं, यह मानना हास्यास्पद है। व्यक्तित्व के गुणों एवं प्रभावशाली नेतृत्व में सहसम्बन्ध विषयक शोधकार्य में इनके मध्य कोई संबंध नहीं पाया गया। (स्टोगडिल, 1948, मान, 1959, बास, 1960) अतः यह विचार किया जाने लगा कि संभवतः गुण नहीं बल्कि व्यवहार नेतृत्व को अधिक प्रभावित करता है।

2. व्यावहारात्मक सिद्धान्त (Behavioural Theory): गुण सिद्धान्त के विपरीत, व्यावहारात्मक सिद्धान्त, नेता क्या करता है, इस आधार पर नेतृत्व का वर्णन करता है, जबकि गुण सिद्धान्त, नेता क्या है, इस आधार पर नेतृत्व की व्याख्या करता है। इस उपागम के अनुसार, नेतृत्व प्रभावी भूमिका निर्वाह हेतु किए जाने वाले व्यवहारों का परिणाम है। नेतृत्व, नेता के गुणों की बजाए उसकी क्रियाओं से झलकता है। अतः यह अत्यंत गत्यात्मक है। इस सिद्धान्त के अंतर्गत प्रभावशाली नेतृत्व की व्यवहार शैलियाँ तथा व्यवहार प्रारूपों का विश्लेषण कर अध्ययन किया गया कि व्यवहार प्रारूप नेतृत्व को किस प्रकार प्रभावित एवं निर्मित करते हैं।

इस उपागम को निम्नलिखित अध्ययनों द्वारा स्पष्टतः समझा जा सकता है:

(A) मिशिगन अध्ययन: विभिन्न औद्योगिक परिस्थितियों का अध्ययन करने के पश्चात् मिशिगन शोधकर्ताओं ने निम्नलिखित दो प्रकार की नेतृत्व शैलियों की पहचान की है जो कर्मचारियों के प्रदर्शन एवं उत्पादकता को प्रभावित करती हैं-

(1) कर्मचारी केन्द्रित नेता

(2) उत्पादकता केन्द्रित नेता

कर्मचारी-केन्द्रित नेता

1. आधिनस्थ मानव है।

2. कर्मचारियों के स्वास्थ्य के प्रति चिन्तित।

3. लक्ष्य निर्धारण में कर्मचारियों को सम्मिलित व प्रोत्साहित करना।

उत्पादकता-केन्द्रित नेता

1. कार्य के तकनीकी पक्ष पर ज़ोर।

2. कार्य-स्तर पर ध्यान एवं बंद पर्यवेक्षण।

3. उत्पादन प्रक्रिया में कर्मचारी एक उत्पादन यन्त्र।

मिशिगन अध्ययन के आधार पर शोधकर्ता कर्मचारियों के व्यवहार एवं उत्पादकता को प्रभावित करने वाले व्यवहारों की पहचान करने में सक्षम हुए और परामर्श दिया कि कार्य की पहचान एवं दिशा निर्धारण से पहले व्यक्तियों की पहचान एवं व्यवहारों की पहचान आवश्यक है। इस परिणाम ने 1950 के दशक में इस विश्वास को बढ़ावा दिया कि कर्मचारी-परक नेतृत्व शैली ही उत्तम शैली है।

(B) ओहियो-स्टेट यूनिवर्सिटी अध्ययन: ओहियो-स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययन के अन्तर्गत वृहद परिस्थितियों में वास्तविक नेतृत्व व्यवहारों का विश्लेषण करके दो मुख्य नेतृत्व व्यवहारों की पहचान की गई वे हैं - आत्मउद्योगी ढाँचा **Initiating Structure** एवं महत्व देना **Consideration**। महत्व देना, नेता का कर्मचारियों के साथ द्विमागी सम्प्रेषण, आपसी आदर एवं सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता आदि को दर्शाता है। आत्मउद्योगी ढाँचा नेता की सीमा एवं संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों की क्रियाओं के परिभाषीकरण को दर्शाता है। अपने शोध के दौरान ओहियो स्टेट के शोधकर्ताओं ने नेतृत्व की पहचान के लिए दो प्रकार की प्रश्नावलियाँ **Leader Behaviour Description Questionnaire (LBDQ)** एवं **Leader Opinion Questionnaire (LOQ)** का निर्माण किया। इनके माध्यम से शोधकर्ताओं ने पाया कि आत्मउद्योगी ढाँचा (IS) एवं महत्व देना (C) दो स्वतंत्र एवं भिन्न आयाम थे। एक आयाम पर उच्च अंक प्राप्त करने का तात्पर्य यह नहीं है कि दूसरे आयाम पर निम्न अंक प्राप्त हों। इन प्रश्नावलियों के माध्यम से शोधकर्ताओं ने आत्मउद्योगी ढाँचा एवं महत्व देना के संयोजन के चार मापक विकसित किए-

High Consideration and low structure	High Consideration and High structure
Low Consideration and Low structure	Low Consideration and High structure

ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने दो स्वतंत्र व्यवहार शैलियों यथा- व्यवस्था प्रधान तथा व्यक्ति प्रधान की पहचान की जो नेतृत्व के क्रमशः व्यवस्था तथा व्यक्ति पर केंद्रित परिस्थितिजन्य व्यवहार को दर्शाती है।

ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययन का बहुत अधिक महत्व था। महत्व देना एवं आत्म-उद्योगी ढाँचा दोनों अवधारणाओं की प्रबन्धकीय प्रशिक्षण में इतनी अधिक माँग हो गयी थी कि विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों में

शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबंधन Educational Administration & Management, MAED 602 Semester III

इनका प्रयोग किया जाने लगा। इनके माध्यम से नेतृत्व की पहचान करना आसान हो गया था, परन्तु समय के साथ इनकी आलोचना भी की गयी, जो निम्नलिखित है-

(क) फिडलर के अनुसार (IS) एवं (C) दो स्वतंत्र आयाम नहीं है। एक व्यक्ति के लिए कर्मचारी-परक एवं उत्पादन-परक दोनों होना संभव नहीं है। ये दोनों पक्ष दो भिन्न व्यक्तियों में हो सकते हैं।

(ख) उच्च (IS) एवं (C) का संयोजन प्रदर्शन बेहतर बनाता है, यह विश्वास भी उचित नहीं है। कोरमैन के अनुसार नेता के व्यवहार एवं उत्पादक जैसे मापकों में कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

(ग) ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी का नेता-व्यवहार उपागम वास्तविकता से परे है। किसी भी निश्चित नेतृत्व व्यवहार पर वातावरण द्वारा पड़ने वाले प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया गया है।

प्रबन्धकीय जाल : इस अवधारणा को अमेरिका के औद्योगिक मनोवैज्ञानिक आर(आर) ब्लेक एवं जेन एस0 मोऊटन द्वारा विकसित किया गया है। प्रबन्धकीय जाल की अवधारणा औद्योगिक परिस्थितियों में व्यवहारिक विज्ञानों में किए जाने वाले प्रायोगिक शोधों पर आधारित है। इस अवधारणा का प्रमुख पक्ष संगठन के अन्दर संगठन के लाभों हेतु व्यक्तियों के व्यवहारों एवं अभिवृत्तियों में प्रभावी सुधार से है। यह प्रबन्धन की कला को विज्ञान में परिवर्तित करता है। ब्लेक एवं मोऊटन के अनुसार उत्पादन एवं व्यक्तियों सम्बन्धी विचार एक सिक्के के दो पहलू हैं और संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दोनों का समन्वित उपयोग किया जाना चाहिए।

प्रबन्धकीय जाल की अवधारणा इस तर्क पर आधारित है नेता की नेतृत्व शैली उत्पादन सम्बन्धी एवं व्यक्ति सम्बन्धी दोनों आयामों का संयोजन है। कोई भी प्रबन्धक पूरी तरह कार्य परक या सम्बन्ध परक नहीं हो सकता, उसमें दोनों के गुण मौजूद रहते हैं। इस दोनों आयामों को स्पष्ट करते हुए ब्लेक एवं मोऊटन के विचार निम्नलिखित हैं-

1. उत्पादन सम्बन्धी: यह केवल वस्तुओं तक सीमित नहीं होता। उत्पादन का मापन सृजनात्मक विचारों की संख्या से होता है जो शोधों को उपयोगी उत्पाद में परिवर्तित करते हैं, कर्मचारी सेवाओं की गुणात्मकता, कार्य-भार, कुशलता आदि इनका मापन करते हैं।

2. व्यक्ति सम्बन्धी: यह विचार केवल अन्तर्व्यक्तिक सम्बन्ध एवं मित्रता तक सीमित नहीं होते, बल्कि इसके अन्तर्गत कार्य को पूरा करने का व्यक्तिगत वचनबद्धता, आत्म-सम्मान, कार्य में सुरक्षा की इच्छा, सहयोगियों के साथ मित्रता जो एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करती है आदि बातें भी आती हैं।

प्रबन्धकीय जाल को निम्न रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है -

कन्टी क्लब	समूह
1,9	9,9
	मध्य मार्ग

	5,5
न्यूनतम प्रयास 1,1	कार्य 9,1

रेखाचित्र उत्पादन एवं व्यक्तियों को महत्व दिए जाने की मात्रा एवं उनके बीच संभव अन्तःक्रिया को दर्शाता है। क्षैतिज अक्ष उत्पादन के विचार को महत्व देने का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि लम्ब अक्ष व्यक्तियों को महत्व देने का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक को महत्व देने के नौ बिन्दु मापनी पर प्रदर्शित किया जाता है। संख्या 1 प्रत्येक पक्ष में न्यूनतम महत्व को दर्शाता है एवं संख्या 9 अधिकतम महत्व को।

न्यूनतम प्रयास: कार्य के सम्पादन एवं संगठन के चरित्र (नैतिकता) को बनाए रखने के लिए न्यूनतम प्रयास आवश्यक हैं।

कन्द्री क्लब: संतुलित, मित्रतापूर्ण संगठन वातावरण हेतु सम्बन्ध को सन्तुष्ट करने के दृष्टिकोण से व्यक्तियों की आवश्यकताओं पर विचारपूर्वक ध्यान देना।

मध्य मार्ग: कार्य करने की आवश्यकता को सन्तुष्टि स्तर तक व्यक्तियों की नैतिकता को बनाए रखते हुए संतुलित करना ताकि संगठन का प्रदर्शन उत्तम हो सके।

कार्य: संगठन के परिणामों में कुशलता प्राप्त करने हेतु कार्य की दशाओं को इस प्रकार व्यवस्थित करना ताकि मानवीय तत्वों का हस्तक्षेप न्यूनतम मात्रा में हो।

समूह: समर्पित एवं आत्मनिर्भर व्यक्तियों द्वारा कार्य की पूर्णता ताकि संगठन में विश्वास एवं आदर युक्त सम्बन्ध स्थापित हो।

सैद्धान्तिक रूप से जाल में 81 संभावित नेतृत्व शैलियाँ प्रकट होती हैं परन्तु सामान्य 5 शैलियों पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। नेता (9,1) का मुख्य सम्बन्ध उत्पादन क्रियाओं से और व्यक्तियों से निम्न सम्बन्ध होता है। इस प्रकार का नेता उत्पादन सूची चाहता है और किसी भी कीमत पर कार्य की पूर्णता चाहता है। (9,1) शैली उत्पादन के प्रति निम्न महत्व एवं व्यक्तियों के प्रति अधिक महत्व को दर्शाती है। (1,1) शैली वाला नेता दोनों (उत्पादन एवं व्यक्ति) के प्रति थोड़ी-थोड़ी भावना रखता है। (5,5) शैली दोनों पक्षों के प्रति उदारता रखती है। (9,9) शैली नेतृत्व की आदर्श शैली को प्रदर्शित करती है। यह शैली दोनों पक्षों के प्रति घनिष्ठ सम्बन्ध को दर्शाती है, इसमें दोनों पक्षों को महत्व दिया जाता है। प्रबन्धकीय जाल के अनुसार (9,9) शैली अनुकूलतम नेतृत्व उपागम है और बहुत से संगठन इस शैली के प्रबन्धक तैयार करने हेतु कार्यक्रम चलाते हैं।

आलोचना: यद्यपि जाल उपागम आकर्षक, निर्देशात्मक एवं प्रबन्धकीय गुणों एवं शैलियों को दर्शाने वाला है। इसके माध्यम से प्रबन्धकों को स्वयं की नेतृत्व शैली की पहचान करने में सहायता प्राप्त होती है, परन्तु इस उपागम में मापन आयामों को इतना जटिल बना दिया गया है कि साधारण व्यक्ति द्वारा इनके माध्यम से नेतृत्व शैलियों एवं नेता के व्यवहारों की पहचान करना कठिन हो जाता है। शोधकर्ताओं में इस उपागम के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है, क्योंकि इससे सम्बन्धित अभुभाविक ज्ञान का अभाव है।

(3) परिस्थितियात्मक अथवा स्थितिपरक सिद्धान्त: नेतृत्व एक जटिल, सामाजिक एवं अन्तर्व्यक्तिक प्रक्रिया है। इसको पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें उन परिस्थितियों को जानना आवश्यक है जिसमें नेता कार्य करता है। एक प्रभावी नेता को अधिनस्थों एवं स्थितियों की भिन्नता को अपनाने में लचीला होना चाहिए। अर्थात् परिस्थिति अनुसार नेता की नेतृत्व शैली भी आवश्यकतानुसार सुसमायोजित होते रहना चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार नेतृत्व परिस्थितिजन्य चरों पर निर्भर होता है।

प्रभावी नेतृत्व व्यक्तित्व, कार्य, शक्तियों अभिवृत्तियों, प्रत्यक्षीकरण आदि पर निर्भर करता है। इस अवधारणा पर आधारित कई सिद्धान्त विकसित किए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं-

फीडलर का प्रासंगिकता सिद्धान्त: नेतृत्व की प्रभावशीलता नेता व्यवहार तथा नेतृत्व का प्रयोग की जाने वाली परिस्थितियों के बीच अन्तःक्रिया का परिणाम है। प्रासंगिकता सिद्धान्त में नेताओं की सफलता स्थितिपरक चरों पर निर्भर करती है।

फ्रेड फीडलर (1967) के अनुसार संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एवं उत्पादन हेतु परिस्थितिजन्य विशेषताएँ एवं नेता के गुण दोनों का संयोजन आवश्यक है। नेता का कार्य नेता के व्यक्तित्व एवं परिस्थिति के उपयुक्त संयोजन पर निर्भर करता है। साथ ही परिस्थितियों में निहित कुछ विशेष कारक नेतृत्व की प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं। फीडलर ने इन विशेष कारकों को परिस्थिति की अनुकूलता का नाम दिया है। नेतृत्व की प्रभावशीलता परिस्थिति की अनुकूलता पर निम्न विशेषताओं के सन्दर्भ में निर्भर करती है-

नेता एवं अधिनस्थों के मध्य सम्बन्ध।

कार्य संरचना की सीमा।

नेता की अधिकारिक शक्ति।

परिस्थितियों का पक्ष में होना।

फीडलर द्वारा वर्णित इन चरों का वर्गीकरण निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा स्पष्टतः समझा जा सकता है-

फीडलर के परिस्थितिजन्य चरों का वर्गीकरण

नेता-सदस्य संबंध	अच्छा	खराब
------------------	-------	------

कार्य-संरचना	उच्च		निम्न		उच्च		निम्न	
नेता पद की शक्ति	शक्तिशाली	कमजोर	शक्तिशाली	कमजोर	शक्तिशाली	कमजोर	शक्तिशाली	कमजोर
परिस्थिति	I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII

पूर्णतः पक्ष में ← → पूर्णतः विपक्ष में

नेता एवं सदस्यों के मध्य अच्छे सम्बन्ध, उच्च स्तर पर संगठित क्रियाएँ एवं नेता का अपने आधिपत्य पर पूर्ण प्रभाव रखने की शक्ति पूर्णतः पक्ष वाली परिस्थिति को दर्शाती है। सारणी का पहला प्रकोष्ठ पूर्णतः पक्ष को दर्शाता है। जहाँ नेता की शक्तियाँ कमजोर होती हैं, सदस्यों के साथ सम्बन्ध खराब होते हैं और कार्य असंगठित एवं अनिश्चित होते हैं वहाँ पूर्णतः विपक्ष की परिस्थिति को दर्शाती है। यह सारणी के अन्तिम प्रकोष्ठ वाली स्थिति है। इन दोनों ही परिस्थितियों के बीच की परिस्थितियाँ अत्यन्त कठिन होती हैं। फीडलर के अनुसार सम्बन्ध-परक शैली सामान्य स्तर पर पक्ष एवं सामान्य स्तर पर विपक्ष वाली परिस्थितियों में उपयुक्त होती है। उच्च पक्ष एवं उच्च विपक्ष वाली परिस्थितियों में कार्य-परक शैली उपयोगी होती है। रेखाचित्र के आधार पर समझा जा सकता है कि कोई नेता एक परिस्थिति में प्रभावशाली हो सकता है। तथा दूसरी में प्रभावहीन।

सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएँ -

- **नेतृत्व शैली:** फीडलर के अनुसार कार्य प्रधान एवं सम्बन्ध प्रधान व्यवहार ही दो मूलभूत शैलियाँ हैं। ये दोनों शैलियाँ आधिपत्य के साथ अच्छे सम्बन्ध एवं कार्य के सफल सम्पादन की माँग पर निर्भर करती हैं।
- **समूह के कार्य निष्पादन में वृद्धि:** इस सिद्धान्त में नेतृत्व की उन शैलियों पर बल दिया गया है जो कार्य निष्पादन में वृद्धि एवं संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होती हैं।
- **समूह-कार्य परिस्थिति:** इस सिद्धान्त के अनुसार नेतृत्व शैली की उपयुक्तता समूह कार्य-परिस्थिति पर निर्भर करती है। इसको फीडलर द्वारा पारस्परिक-विन्यास के रूप में देखा है जो नेता के प्रभाव को बढ़ाने में सहायक होता है।

आलोचना : फीडलर का मॉडल प्रकट करता है कि नेता परिस्थिति की माँगों के अनुरूप कार्य-परक या सम्बन्ध परक हो जाता है। इस मॉडल की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि फीडलर अपने सिद्धान्त को ज्ञात परिणाम प्राप्त करने हेतु आकार देते हैं।

- फीडलर के प्रासंगिकता सिद्धान्त का कोई सैद्धान्तिक आधार नहीं है, यह केवल ल अनुभाविक सामान्यीकरण पर आधारित है।
- फीडलर द्वारा दी गई परिस्थिति में उच्च-पद शक्ति दूसरी परिस्थिति में निम्न पद-शक्ति हो सकती है।
- यद्यपि फीडलर का सिद्धान्त नेतृत्व शैली के अध्ययन के दृष्टिकोण से बहुत अधिक उपयुक्त है तथापि इसमें बहुत अधिक जटिलता है।

हरसे तथा ब्लेनचर्ड का स्थितिपरक सिद्धान्त: ओहियो विश्वविद्यालय के पाल हरसे एवं कैनेथ एच0 ब्लेनचर्ड के अनुसार नेतृत्व की विभिन्न शैली विभिन्न परिस्थितियों में प्रभावशाली एवं अप्रभावशाली हो सकती हैं। एक शैली एक परिस्थिति में प्रभावशाली होती है तो दूसरी परिस्थिति में अप्रभावशाली हो जाती है। परिस्थितियाँ ही नेता की शैली को प्रभावी अथवा अप्रभावी बनाती हैं। लेखकद्वय ने सैद्धान्तिक परिस्थितियों के लिए दो आयामों कार्य-वातावरण एवं परिस्थिति को अपनाया है। यह सिद्धान्त नेतृत्व का “जीवन चक्र सिद्धान्त” के नाम से भी जाना जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों में संगठन के सदस्यों का परिपक्वता स्तर एक विशिष्ट कारक होता है, जो नेतृत्व को प्रभावी अथवा अप्रभावी बनाता है। समूह का ये परिपक्वता स्तर सदस्यों द्वारा सम्पादित विशिष्ट कार्य के माध्यम से जाना जाता है। लेखकद्वय के अनुसार परिपक्वता दो अन्तर्सम्बन्धित कारकों में संयोजन से निर्मित होती है। ये कारक हैं-

उच्च लेकिन वास्तविक लक्ष्यों का निर्धारण करने की क्षमता एवं इच्छा।

लक्ष्य प्राप्ति हेतु उत्तरदायित्व लेने की क्षमता एवं इच्छा।

इन कारको के आधार पर नेतृत्व प्रभावशीलता को ज्ञात करने के तीन आयाम निर्धारित किए गए हैं-

कार्य प्रधान

सम्बन्ध-प्रधान

समूह की परिपक्वता

यह सिद्धान्त मानता है कि समूह के सदस्यों के परिपक्वता स्तर को समय के साथ प्रशिक्षण आदि के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है। यही परिपक्वता स्तर नेतृत्व शैली की प्रभावशीलता में वृद्धि करता है। सदस्य जिनते परिपक्व होंगे वे नेता के आदेशों को उतनी ही कुशलता से समझेंगे और उनके पालन में अपना योगदान देंगे।

लेखकद्वय ने अनुसार सदस्यों की परिपक्वता स्तर को कार्य-प्रधान व्यवहार में कमी एवं सम्बन्ध-प्रधान व्यावहार में वृद्धि द्वारा जाना जा सकता है।

आलोचना: 1. हरसे-ब्लेनचर्ड द्वारा दिए गए सिद्धान्त में परिस्थिति से जुड़े आयामों के बारे में बताया गया है परन्तु उनका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है।

2. यह सिद्धान्त सदस्यों की परिपक्वता स्तर को नेतृत्व की प्रभावशीलता से जोड़ता है, परन्तु सदस्यों में व्यक्तिगत भिन्नता के फलस्वरूप परिपक्वता स्तर प्राप्त करने का भी भिन्न-भिन्न स्तर होता है। ऐसी स्थिति में एक समय पर सभी सदस्यों से एक जैसी परिपक्वता की आशा नहीं की जा सकती है।

3. परिपक्वता स्तर कार्य-प्रधान व्यवहार में कमी एवं सम्बन्ध प्रधान व्यावहार में वृद्धि द्वारा पाया जा सकता है, परन्तु ये कमी एवं वृद्धि परिस्थितियों के अनुरूप हो तभी लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है। ऐसी स्थिति में आवश्यक समय पर आवश्यक परिपक्वता की प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है।

व्रूम तथा चैटन का मानकीय प्रासंगिकता सिद्धान्त : विक्टर व्रूम तथा फिलिप चैटन का प्रासंगिकता सिद्धान्त बताता है कि विशिष्ट परिस्थितियों से सम्बन्धित प्रासंगिकता के दृष्टिकोण से प्रभावित होने के लिए कैसा व्यवहार नेता द्वारा किया जाना चाहिए। इस सिद्धान्त को मानकीय सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह नेता-व्यवहार से जुड़ी प्रासंगिकताओं के मानक तय करता है। अर्थात् किसी विशेष परिस्थिति में नेता का व्यवहार किस प्रकार होना चाहिये का मानक निश्चित करता है। इस सिद्धान्त में लेखकद्वय ने निम्नलिखित पाँच प्रकार की नेतृत्व शैलियों का वर्णन किया है-

तानाशाही या निरंकुश प्रक्रिया: इस श्रेणी में दो प्रकार की नेतृत्व शैलियाँ आती हैं।

- 1: नेता उपलब्ध सूचनाओं का अध्ययन कर निर्णय लेता है।
- 2: नेता सदस्यों से सूचनाएँ प्राप्त कर निर्णय लेता है एवं सदस्यों को समस्या का ज्ञान करा सकता है या नहीं भी कराता है।

परामर्शवादी प्रक्रिया : इस श्रेणी में दो प्रकार की नेतृत्व शैलियाँ आती हैं-

- 1: इस शैली में नेता मुख्य सदस्यों के सहयोग से निर्णय लेता है। वह एक-एक से व्यक्तिगत रूप से सूचनाएँ ग्रहण करता है, न कि समूह में।
- 2: इस शैली में नेता किसी समूह में सदस्यों से सूचनाएँ प्राप्त कर समूह में ही निर्णय लेता है।

समूह प्रक्रियाएँ : यह शैलियों का समूह है जिसमें नेता निम्न प्रकार से निर्णय लेता है।

इस शैली में नेता समूह में सदस्यों के साथ समस्या पर विचार करता है। साथ ही सदस्यों को सहयोग भी प्रदान करता है ताकि सामूहिक निर्णय हेतु एकमत पर पहुँचा जा सके। नेता सदस्यों से सूचनाएँ प्राप्त करता है, अपने विचार प्रदान करता है परन्तु वह अपने निर्णय सदस्यों पर थोप नहीं सकता, केवल अप्रत्यक्ष ढंग से सदस्यों को

अपने निर्णय की स्वीकृति के लिए तैयार कर सकता है। अन्त में वह उन्हीं निर्णयों को पारित करता है जिनमें सर्वसम्मति हो।

वूम तथा येटन का सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं-

मान्यताएँ :

निर्णय शैली परिस्थितियों के अनुरूप बदलती है।

नेतृत्व शैली निर्णयों द्वारा प्रभावित होने वाले सदस्यों की संख्या के आधार पर भिन्न-भिन्न होती है।

कोई भी नेतृत्व शैली प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त नहीं होती।

निर्णय प्रक्रिया में सदस्यों की सहभागिता को प्रभावित करने हेतु नेता को उपयुक्त प्रक्रिया का चयन करना चाहिए।

नेतृत्व शैली का चयन निम्न तीन चरों पर निर्भर करता है-

निर्णय की गुणात्मकता

निर्णय की स्वीकृति

निर्णय लेने हेतु आवश्यक समय की मात्रा

परिस्थिति का निदान: किन परिस्थितियों में कैसे नेतृत्व का प्रयोग किया जाना है उनके निदान हेतु सात प्रश्नों के उत्तरों को जानना आवश्यक है। जिनके उत्तर हाँ या नहीं में दिये जायेंगे। ये प्रश्न हैं-

क्या समस्या में गुणवत्ता की आवश्यकता निहित है? इसका तात्पर्य यह देखना है कि क्या निर्णय तुरन्त लिये जाने हैं तथा दूसरों से परामर्श का समय नहीं है।

क्या सही एवं अच्छा निर्णय लेने हेतु नेता के पास पर्याप्त समय है?

क्या समस्या भली-भाँति सुगठित है?

क्या क्रियान्वयन हेतु निर्णय को सदस्यों की स्वीकृति आवश्यक है?

यदि नेता अकेले निर्णय लेता है तो दूसरों द्वारा स्वीकृति दी जाने की कितनी निश्चितता है?

क्या संस्थागत लक्ष्यों के निर्धारण में सदस्यों ने भाग लिया है?

क्या समस्या के चुने हुए समाधान से सदस्यों में विरोध होने की सम्भावना है?

इन प्रश्नों के उत्तर जानकर परिस्थिति की प्रासंगिकता के निदान के पश्चात् ऐसी नेतृत्व शैली खोजी जाती है, जो सर्वाधिक उपयुक्त है। इस प्रकार वूम एवं येटन के मॉडल से दो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं-(1) किसी विशिष्ट परिस्थिति में एक या एक से अधिक नेतृत्व शैली प्रभावी होती है।

(2) यदि समय की कमी है एवं विरोधाभास की स्थिति है तो नेता को निरंकुश शैली अपनानी चाहिए और यदि वह अपने आधिनस्थों के विकास हेतु कुछ समय चाहता है तो उसे सहभागी शैली अपनानी चाहिए।

आलोचना: (1) इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी 'समय बाध्यता' की है। ऐसी बाध्यता में नेता ऐसी शैली अपनाने में लाभ समझता है जो कम समय लेती हैं। परन्तु ऐसी शैली प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त नहीं हो सकती।

(2) इस सिद्धान्त में विधि सम्बन्धी समस्याएँ विद्यमान हैं, अर्थात् यदि प्रबंधक निर्णय में अपने सदस्यों की सहभागिता चाहता है तो उसे सदस्यों के प्रशिक्षण हेतु समय चाहिए साथ ही सदस्यों को निर्णय लेने में, सुझाव देने में समय लगता है तथा उन्हें प्रेरित करने के लिए पुरस्कृत भी किया जाना चाहिए। इन सब विधियों के बाद भी नेतृत्व शैली की प्रमाणिकता सिद्ध नहीं होती और यह कमी सिद्धान्त की उपयोगिता को कम कर देती है।

मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त: आर.जे. हाउस द्वारा प्रस्तावित मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त के अनुसार, नेता को संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्यों को व्यक्तिगत पुरस्कार प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए प्रेरित करना चाहिए। ये मार्ग तभी स्पष्ट होगा जब सदस्यों के विचारों की द्विविधा अथवा विरोधाभास को समाप्त किया जाएगा। आधिनस्थों को दिए जाने वाले पुरस्कारों के प्रकार एवं मात्रा में नेता द्वारा वृद्धि की जानी चाहिए। उसे पुरस्कार प्राप्ति के मार्ग को स्पष्ट करने हेतु निर्देशन एवं परामर्श भी देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, आधिनस्थों को कार्य-सुरक्षा, वास्तविक अनुभव प्राप्त करने हेतु स्पष्टीकरण एवं मूल्यपरक लक्ष्यों की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को प्रबन्धक द्वारा दूर किया जाना चाहिए। नेता को लक्ष्य एवं मार्ग को स्पष्ट करना चाहिए। सहयोग एवं पुरस्कार प्रदान करना चाहिए, साथ ही कार्य, परिस्थितियों एवं कर्मचारियों की आवश्यकताओं का विश्लेषण करना चाहिए।

उपरोक्त कार्यों के सम्पादन हेतु नेता को निम्नलिखित व्यावहारिक शैलियाँ अपनानी चाहिए-

(1) **सहयोगात्मक :** नेता, आधिनस्थों के प्रति मित्रवत् हो, कर्मचारियों की आवश्यकता, सुरक्षा एवं स्थिति के प्रति सचेत हो और सहयोगियों को अपने बराबर समझे।

(2) **निर्देशात्मक :** नेता इस शैली में नियोजन, संगठन एवं कर्मचारियों की क्रियाओं को निर्देशित करता है। वह प्रदर्शन के स्तर को परिभाषित करता है और आधिनस्थों को प्रकट करता है कि उनसे क्या आशा की जाती है?

(3) **सहभागी :** इस शैली में नेता, कर्मचारियों से सलाह लेता है, उनके सुझावों को अपनाकर एक उत्तम निर्णय लेता है।

(4) **उपलब्धि-परक:** इस शैली को अपनाने वाले नेता चुनौतीपूर्ण लक्ष्य निर्धारित करते हैं, कर्मचारियों से अपना उत्तम देने की आशा करते हैं और निरन्तर कर्मचारियों के प्रदर्शन स्तर में सुधार चाहते हैं।

हाउस के अनुसार एक निश्चित नेतृत्व शैली, जो कि सदैव उत्तम कार्य करे, दो चरों द्वारा निर्धारित होती है-

कर्मचारियों के गुण: नेता द्वारा अपनायी जाने वाली शैली उसके अनुयायियों की आवश्यकता, योग्यता एवं व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। यदि अनुयायी उच्च योग्यता वाले हैं तो सहयोगात्मक शैली उपयुक्त होती है और यदि अनुयायी निम्न योग्यता वाले हैं तो निर्देशात्मक शैली उपयुक्त होती है। उच्च आवश्यकता वाले अनुयायियों हेतु सहयोगी नेता एवं उच्च आवश्यकता वाले, उपलब्धि प्राप्त करने वाले अनुयायियों हेतु कार्य-परक नेता आवश्यक हैं। अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले कर्मचारी जो मानते हैं कि वे अपने व्यवहार को नियंत्रित कर सकते हैं, वे सहयोगी व्यावहार वाला नेता चाहते हैं।

कार्य वातावरण: वातावरणीय चर कर्मचारियों के नियंत्रण में नहीं होते लेकिन वे प्रभावी प्रदर्शन की योग्यता अथवा सन्तुष्टि हेतु महत्वपूर्ण होते हैं। इसके अन्तर्गत कर्मचारी क्रियाएँ, औपचारिक अधिकारिक ढाँचा एवं प्राथमिक कार्य समूह आते हैं।

कार्य सन्तुष्टि

प्रासंगिकता कारक कार्य ढाँचे के साथ आधिनस्थ सन्तुष्टि एवं निर्देशालय नेता के बीच परिकल्पनात्मक सम्बन्ध स्पष्ट होता है कि ढाँचागत अथवा संगठित कार्य, उच्च स्तर के निर्देशालय व्यवहार, निम्न कार्य सन्तुष्टि से जुड़े रहते हैं। असंगठित कार्यों के लिए उच्च स्तर की निर्देशात्मकता, उच्च स्तर की कार्य सन्तुष्टि के साथ जुड़ी रहती है। अन्तिम विश्लेषण के अनुसार, मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त प्रस्तावित करता है, कि कर्मचारियों को वातावरणीय अनिश्चितताओं से जूझने के लिए कर्मचारियों को उपाय समझाने हेतु नेता का व्यवहार प्रेरणादायक होगा। कार्य की अनिश्चितताओं को कम करने की योग्यता रखने वाला नेता प्रेरक होना चाहिए क्योंकि वह कर्मचारियों की अपेक्षाओं को बढ़ाता है ताकि उनके प्रयास उन्हें पुरस्कार प्रदान करें। इस प्रकार मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त नेता को आधिनस्थों एवं परिस्थितियों दोनों को समान महत्व देने को प्रेरित करता है।

आलोचना: (1) यह एक जटिल स्थितिपरक सिद्धान्त है। विधियों की जटिलता के कारण अनुभाविक परीक्षण कठिन है।

(2) इस सिद्धान्त के पीछे शोधकर्ताओं एवं विशेषज्ञों की मान्यताओं का अभाव है। इस सिद्धान्त से जुड़े शोधों की संख्या भी नाममात्र है, इस कारण इसकी प्रमाणिकता पर प्रश्न चिन्ह लगता है।

(3) इस सिद्धान्त से जुड़े शोध प्रमाण कभी-कभी सिद्धान्त निर्माणक तत्व बन जाते हैं।

(4) यह एक अपूर्ण सिद्धान्त है जो नेता के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कर्मचारियों से जुड़े कुछ कारकों जैसे अपेक्षा, स्वीकृति, सन्तुष्टि आदि पर ही विचार करता है। यह नेतृत्व शैली का संभावित स्पष्टीकरण मात्र है।

(5) यह नेता के व्यवहार को प्रभावित करने वाले व्यक्तिगत गुणों की अवहेलना करता है।

5.5 निबंधात्मक प्रश्न

1. नेतृत्व को परिभाषित कीजिए।

2. नेतृत्व के कौन-कौन से सिद्धान्त प्रचलन में हैं? मानक बताइये।

5.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Terry, G.R. (1954). Principles of Management, Illinois, Richard, D. Trwin. Inc., Homewood.
- Tannenbaum & Schmidt, W. 'How to choose a leadership Pattern, Harvard Business Review.
- Koontz, Harold & O' Donnel, Cyril. Essentials of Management, New York, Tata Mc. Graw Hill.
- Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.
- Hughes, Richard L., Gennett, R.C. & Curphy, Gordon J. Leadership, Enhancing the lessons of Experience (Sixth edition) New York, Tata Mc Graw Hill.
- Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
- Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition). Jaipur Rajasthan Hindi Granth Academy.

इकाई 6 . नेतृत्व की शैलियाँ

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 नेतृत्व की शैलियाँ

6.3.1 एकतंत्रतीय अथवा अधिकारिक शैली

6.3.2 प्रजातांत्रिक शैली

6.3.3 लेसेज़ फेयर अथवा अहस्तक्षेपी शैली

6.3.4 पितातुल्य शैली

6.3.5 व्यवहार शैली

6.3.6 रूपान्तर शैली

6.3.7 सहभागी शैली

6.3.8 सहयोगी शैली

6.4 क्रियाकलाप

6.5 संदर्भ एवं सहायक पुस्तक सूची

6.1 प्रस्तावना

नेतृत्व एक मूल्य-परक अवधारणा है। परम्परागत अवधारणा के अनुसार नेतृत्व एक व्यक्तिगत योग्यता है। नेता आलौकिक शक्तियों द्वारा बनते थे जिनमें मानव-मस्तिष्क को पढ़ने की योग्यता होती थी। वर्तमान समय में नेतृत्व को एक व्यक्तिगत योग्यता के रूप में देखा जाता है। वर्तमान परिभाषाओं में नेतृत्व को एक समाज-प्रभावित प्रक्रिया माना गया है। नेतृत्व, किसी दी हुई परिस्थिति में निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समूह-क्रियाओं को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। यह प्रबंधक की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह अपने सहयोगियों को पूर्ण उत्साह एवं आत्म-विश्वास के साथ कार्य करने को प्रेरित करता है। शिक्षण संस्थानों में शिक्षक, पर्यवेक्षक निरीक्षक प्रधानाचार्य, विभागाध्यक्ष, निदेशक, समन्वयक, कुलपति आदि नेतृत्व का कार्य संभालते हैं। शैक्षिक नेता के रूप में वे संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु उत्तरदायी होते हैं।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- नेतृत्व शैली की अवधारणा से परिचित होंगे;

- नेतृत्व की एकतांत्रिक, प्रजातांत्रिक, पितातुल्य शैली, व्यवहार शैली, रूपान्तर शैली, सहभागी शैली, सहयोगी शैली तथा अहस्तक्षेपी शैलियों के बारे में जान सकेंगे।
- शैक्षिक संस्थाओं में नेतृत्व के विभिन्न शैलियों के महत्व से परिचित हो सकेंगे।

6.3 नेतृत्व की शैलियाँ

शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में उच्च अधिकारियों अथवा नेता द्वारा आधिपत्य अथवा सहकर्मियों के हृदय को जीतने वाला, उनको सहयोग व परामर्श, पुरस्कार-दण्ड देने, अनुशासन बनाये रखने वाला व्यावहारिक जो व्यक्ति अथवा अर्जित गुणों, परिस्थितियों पर आधारित होता है, शैक्षिक नेतृत्व कहा जाता है। सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल शिक्षा के विकास, सामूहिक कार्यक्रमों में समन्वय, शिक्षा में नियोजन एवं संलग्नता की सफलता हेतु शैक्षिक नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर उन्नति, विकास, विद्यालय की प्रगति हेतु एक कुशल नेता की आवश्यकता होती है। एक शैक्षिक नेता सामाजिकता, सामाजिक जागरूकता बनाये रखने, सामाजिक विशेषताओं के अनुकूल विद्यालय की व्यवस्था करने, उच्च शैक्षिक प्रबन्धन हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय प्रबन्धन में प्रबन्धक अथवा प्रधानाचार्य एवं कक्षा स्तर पर अध्यापक नेता की भूमिका निभाता है।

किसी भी शैक्षिक संस्था में नेतृत्व संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य परिवेश को इस प्रकार निश्चित करता है कि प्रधानाचार्य, शिक्षक, गैर-शिक्षण कर्मचारी एवं छात्रों सभी शैक्षिक संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु तत्पर होकर कार्य करते हैं। चूँकि एक शैक्षिक संस्था के उत्थान से समाज का उत्थान जुड़ा होता है अतः शैक्षिक नेता का उत्तरदायित्व बहुत अधिक जटिल एवं महत्वपूर्ण होता है। शैक्षिक संस्थानों के प्रबन्ध में शैक्षिक नेतृत्व निहित है तथा शैक्षिक नेतृत्व में संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करने के दक्ष एवं प्रभावशाली तरीके निहित होते हैं।

शैक्षिक नेतृत्व का कार्यक्षेत्र :

शैक्षिक नेतृत्व के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्षेत्र समाहित किए जा सकते हैं-

1. विद्यालयी क्रियाओं हेतु उद्देश्य निश्चित करना।
2. नीति निर्धारित करना।
3. कार्य का निश्चय एवं प्रारूप तैयार करना।
4. प्रशासकीय कार्यों तथा उनके ढाँचे में समन्वय करना।
5. प्रभाव तथा संचालन का मूल्यांकन।
6. शिक्षा के विकास हेतु सामाजिक नेतृत्व के साथ मिलकर कार्य करना।
7. शैक्षिक संसाधनों का कुशलतम उपयोग।

8. सम्बन्धित शैक्षिक कार्यों में समाज के व्यक्तियों, विशेषज्ञों से सहयोग एवं विचार विनिमय करना।

नेतृत्व शैलियाँ

नेतृत्व शैली, एक नेता की दिशा निर्देश प्रदान करने, योजनाओं के क्रियान्वयन एवं आधीनस्थों को प्रेरित करने की शैली को प्रदर्शित करती है। नेतृत्व शैली, एक नेता के सामान्य व्यक्तित्व, सहनशक्ति एवं संगठनात्मक व व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मार्ग दर्शन प्रदान करने की दिशा में अपनायी जाने वाली सम्प्रेषण तकनीकों आदि पर निर्भर करती है। कर्मचारियों द्वारा नेता द्वारा किये जाने वाले व्यावहारों का पर्यवेक्षण कर उनका नामकरण नेतृत्व शैलियों के नाम से जाना जाता है।

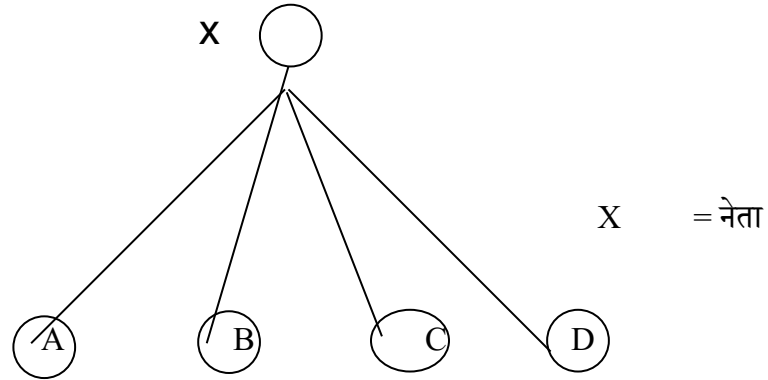
नेतृत्व शैलियों की दिशा में किये गए शोधों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि एक सफल नेता प्रत्येक परिस्थिति में एक संगत शैली ही अपनाने का प्रयत्न करता है। एक नेता की शैली संगठन की प्रकृति एवं बाह्य समुदायों के साथ उसके सम्बन्धों में प्रदर्शित होती है। एक नेता, संगठन के भीतर नेतृत्व का सम्प्रत्यय एवं नेता द्वारा निर्देशित करने की तकनीकों आदि के संयोजित रूप से नेतृत्व शैली निर्मित होती है। एक संगठन के भीतर नेतृत्व की अवधारणा निर्देशन विधियाँ, परिवर्तन हेतु अभिवृत्ति आदि नेता द्वारा विभिन्न शैलियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सामान्यतः नेतृत्व शैली संगठन लक्ष्यों की सफलता पूर्वक प्राप्ति हेतु नेता द्वारा अपनाया जाने वाला मार्ग है। इसका संगठन एवं उसके कर्मचारी सदस्यों पर गहरा प्रभाव पड़ता है और एक कुशल शैली ही संगठन को प्रभावी अथवा अप्रभावी बनाती है। एक संगठन के भीतर परिस्थितियों के अनुरूप नेता को विभिन्न शैलियाँ अपनानी पड़ती है। किसी अवसर पर कर्मचारी एवं आधीनस्थ नेता की ओर से प्रशंसा अथवा पुरस्कार की अपेक्षा करते हैं तो किसी अवसर पर समूह में दूरदर्शिता प्रशिक्षण की नवाचारी तकनीकों को अपनाने की आवश्यकता महसूस की जाती है, ऐसी परिस्थितियों में नेता को बड़ी सूझ-बूझ के साथ नेतृत्व शैली का चयन करना होगा। नेतृत्व शैली, एक संगठन के भीतर प्रत्येक क्षेत्र एवं प्रत्येक क्रिया को प्रभावित करती है। इसलिए यह समझना बहुत ही महत्वपूर्ण है कि विभिन्न परिस्थितियों में कौन सी शैली अधिक प्रभावी होगी और कौन सी कम प्रभावी।

नेतृत्व शैलियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं, कुछ प्रमुख शैलियों का विवरण अग्रलिखित है--

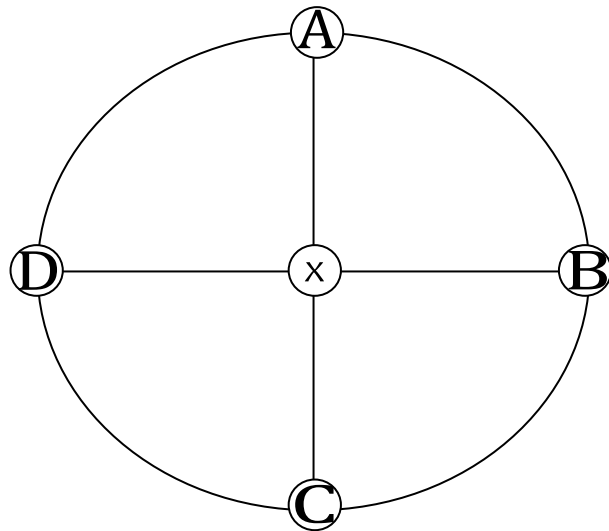
6.3.1 एकतंत्रतीय अथवा अधिकारिक शैली (Autocratic or Authoritarian Style): इस प्रकार की शैली में बिना कर्मचारियों से परामर्श लिये नेता द्वारा ही सारे निर्णय किये जाते हैं। शक्तियाँ एवं विनिश्चयीकरण उसमें ही केन्द्रित रहती हैं। नेता का कर्मचारियों पर पूरा नियंत्रण रहता है। नेता द्वारा आदेश दिये जाते हैं और कर्मचारियों से आशा की जाती है कि वे बिना किसी विरोध के उनका पालन करें। इस प्रकार नेता आज्ञाकारी एवं नियमबद्ध व्यावहार सदस्यों द्वारा करने की योग्यता विकसित करता है। वह कार्य में सीमित स्वतंत्रता प्रदान करता है। पुरस्कार एवं दण्ड दोनों के माध्यम से अनुशासन स्थापित किया जाता है, जिसमें दण्ड का अधिक

योगदान होता है। सम्प्रेषण एक-मार्गी होता है। आधिस्थों को प्रत्येक कार्य के लिए उच्च अधिकारियों पर निर्भर रहना होता है। निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा इस शैली को समझा जा सकता है-



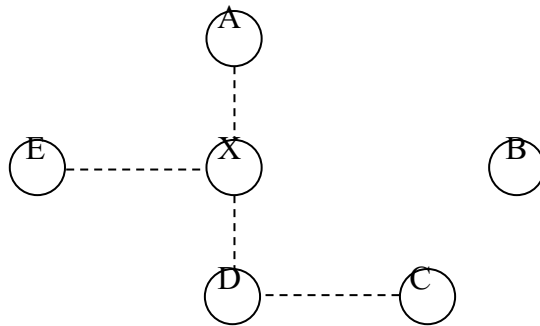
कर्मचारियों की अनुभवहीनता, असुरक्षा एवं अकुशलता की स्थिति में इस शैली का प्रयोग किया जाता है।

6.3.2 प्रजातांत्रिक शैली (Democratic Style): प्रजातांत्रिक नेता विनिश्चयीकरण प्रक्रिया में आधिस्थों के योगदान को प्रोत्साहित करता है। वह निर्णय लेने से पहले उनका परामर्श लेता है। इस प्रकार की शैली खुली हुई, द्विमार्गी सम्प्रेषण वाली शैली है। समूह के सदस्यों के बीच एक उत्तम स्थिति बनाने का प्रयास किया जाता है। नेता प्रभुत्व नहीं जमाता है। वह आधिस्थों को हर प्रकार की स्वतंत्रता देता है, परन्तु अनुशासनहीनता उत्पन्न नहीं होने देता। समूह के सदस्यों की अधिकतम योग्यता का लाभ प्राप्त करने के लिए नेता, सहभागिता एवं सहयोग पर जोर देता है। इस शैली को निम्न रेखाचित्र द्वारा जाना जा सकता है-



जब संगठन द्वारा अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य आधिनिस्थों को सम्प्रेषित किये जाते हैं, तब नेता आधिनिस्थों की सलाह चाहता है, जब आधिनिस्थ निर्णय प्रक्रिया में भाग लेते हैं एवं कर्मचारियों की कुशलता एवं अनुभव का लाभ उठाने की स्थितियों में इस शैली का प्रयोग किया जाता है।

6.3.3 लेसेज़ फेयर अथवा अहस्तक्षेपी शैली (Laissez Faire or Free-rein Style): इस शैली में नेता सभी कार्य एवं समस्याएँ आधिनिस्थों पर डाल देता है। आधिनिस्थों से आशा की जाती है कि वे ही लक्ष्य का निर्धारण करें एवं उनकी प्राप्ति हेतु योजनाएँ बनायें। नेता कोई निर्देश नहीं देता है। वह केवल निष्क्रिय निरीक्षक बना रहता है एवं शक्तियों का उपयोग नहीं करता है। केवल आवश्यकता पड़ने पर सलाह देता है। समूह के सदस्यों पर उसका बहुत कम नियंत्रण रहता है। जिन संगठनों में लक्ष्यों को पहले से ही सम्प्रेषित कर दिया जाता है एवं आधिनिस्थों द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है, आधिनिस्थ अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए पूर्ण प्रशिक्षित, उच्च ज्ञान एवं अनुभव वाले होते हैं, ऐसी परिस्थितियों में इस शैली का प्रयोग किया जाता है। आधिनिस्थ उच्च प्रेरणा वाले, कार्य के प्रति समर्पित होते हैं। इस शैली को निम्न रेखाचित्र द्वारा जाना जा सकता है।



6.3.4 पितातुल्य Paternalistic style -

इस प्रकार की शैली को अपनाने वाला नेता अपने अधिनिस्थों के साथ पितातुल्य व्यवहार करता है। इस शैली को अपनाने वाला नेता अपने कर्मचारियों की पूर्ण देखभाल करना है और बदले में उनके विश्वास और नेता के प्रति वफादारी का पात्र होता है। कर्मचारी अपने नेता के विश्वासों के प्रति पूर्ण समर्पित होते हैं और स्वच्छन्द होकर कोई कार्य नहीं करते हैं। नेता और कर्मचारियों के मध्य सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ठ होते हैं। कर्मचारियों से नेता के प्रति विश्वास एवं वफादारी के कारण यह अपेक्षा की जाती है कि वे संगठन के साथ लम्बे समय तक जुड़े रहें। इस शैली को अपनाने वाले संगठन कर्मचारियों को परिवार जैसा वातावरण प्रदान करते हैं और कर्मचारी भी मानते हैं कि उनकी हर समस्या का समाधान किया जाएगा। इस प्रकार की नेतृत्व शैली को अपनाने वाले नेता उच्च संगठनात्मक कौशलों से युक्त होता है। नेता कर्मचारियों को स्वस्थ कार्य दशाएँ प्रदान करता है ताकि संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में कोई कमी न रह जाय और यही कर्मचारियों के आत्म विश्वास को बढ़ाने में सहायक होता है ताकि संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु वे पुरस्कार पद्धति के क्रियान्वयन में

भी सहायक होती है। यह शैली कर्मचारियों को पुरस्कार की लालसा में उच्च श्रेणी के प्रदर्शन हेतु प्रेरित करती है और इस तरह के निर्धारित समय सीमा के भीतर लक्ष्यों की प्राप्ति कर पाते हैं।

6.3.5 व्यवहार शैली TRANSACTIONAL STYLE : प्रबंधन के अन्तर्गत इस शैली का प्रयोग करने वाले नेता पुरस्कार अथवा दण्ड पद्धति के माध्यम से अपने कर्मचारियों को प्रेरित करने का प्रयत्न करते हैं। इस शैली का सर्वप्रथम वर्णन 1947 में मैक्स वेबर द्वारा किया गया और 1981 में बर्नार्ड बास द्वारा पुनः इसका विश्लेषण किया गया। इस शैली के दो प्रमुख आधार हैं- प्रासंगिक पुरस्कार एवं अपवाद द्वारा प्रबंधन।

प्रासंगिक पुरस्कार: कर्मचारियों के अच्छे प्रदर्शन हेतु उन्हें मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक पुरस्कार प्रदान करना।

अपवाद द्वारा प्रबंधन: यह अवधारणा नेता को यथास्थिति बनाये रखने के लिए प्रेरित करती है। जब कर्मचारियों का प्रदर्शन स्तर स्वीकार्य न हो तो उनके प्रदर्शन में आवश्यक सुधार हेतु नेता पहल करते हैं। यह अवधारणा इसलिए भी स्वीकार्य है कि यह प्रबंधक के कार्यभार को काफी हद तक कम करती है और केवल उन्हीं परिस्थितियों में उनको आगे आने को प्रेरित करती है जब कर्मचारी ठीक ढंग में उनको आगे आने को प्रेरित करती है जब कर्मचारी ठीक ढंग से मान्य स्तर का प्रदर्शन न कर रहे हों। इस शैली के माध्यम से नेता अपने कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पहचान कर उन्हें एक निश्चित प्रदर्शन स्तर के बदले सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इस शैली के माध्यम से नेता पूर्व निर्धारित क्रियाओं और विधियों की कुशलता को बढ़ाने हेतु ध्यान केन्द्रित करते हैं। वे संगठन के निर्धारित नियमों को परिवर्तित करने के बजाय उनके पालन पर ही जोर देते हैं। यह शैली एक युक्तिसंगत नेतृत्व को प्रस्तुत करती है जो संगठन के विकास के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। समूह नवाचार हेतु यह शैली बहुत आवश्यक है। इस शैली हेतु संगठनात्मक लक्ष्यों एवं कार्य सम्पादन हेतु लोगों की आवश्यकताओं के साथ अपेक्षाओं के समन्वय की आवश्यकता होती है।

6.3.6 रूपान्तर शैली Transformational Style

इस शैली को अपनाने वाला नेता अपने कर्मचारियों के प्रत्यक्षीकरण में बंधा नहीं होता है। उसका मुख्य उद्देश्य अपने कर्मचारियों की आवश्यकताओं को परिवर्तित अथवा रूपान्तरित एवं उनकी सोच को पुनः निर्देशित करना होता है। इस शैली को अपनाने वाला नेता अपने कर्मचारियों को कर्तव्य निष्ठ और उत्साही बनाकर प्रेरित करता है एवं चुनौतियाँ प्रदान करता है। उन्हें क्या प्राप्त करना है इसके लिए अपने कर्मचारियों को दूरदर्शी बनाता है साथ ही उनका साथ अपने विचार भी बाँटता है। शुल्ट्ज एवं शुल्ट्ज के अनुसार रूपान्तरण शैली को अपनाने वाले नेता में तीन प्रमुख विशेषताएँ होती हैं-

- स्व-विकास करने वाला व्यक्तित्व, उच्च शक्ति स्तर, जोखिम उठाने की इच्छा एवं कर्मचारियों को स्वतंत्र चिंतन हेतु प्रेरित करने के लिए अनियमित युक्तियों के प्रयोग का गुण नेता में होता है।
- व्यक्तिगत सहायता प्रदान करना।
- बौद्धिक उद्दीपनों को प्रस्तुत करना।

यह शैली प्रबन्धन की ओर से उच्च स्तरीय सम्प्रेषण आधारित होती है। स्पष्ट दृष्टिकोण एवं कुशल सम्प्रेषण के माध्यम से नेता, कर्मचारियों को प्रेरित करता है एवं उनकी उत्पादकता व दक्षता को बढ़ाता है। इस शैली को अपनाने वाले संगठन में नेता का ध्यान संगठन के वृहद लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर होता है और कर्मचारीगण वृहद लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में संगठन के छोटे लक्ष्यों एवं समूह क्रियाओं के सम्पादन की ओर होता है। इस शैली को अपनाने वाले नेता अपने कर्मचारियों को ऐसा वातावरण प्रदान करते हैं जहाँ हर व्यक्ति अपनी उच्च आवश्यकताओं की प्राप्ति में सक्षम होता है और एक उत्पादक अधिगम समुदाय का सदस्य होता है। यह शैली नैतिक नेतृत्व, प्रेम से निर्देशित करना एवं आध्यात्मिक नेतृत्व का समन्वित रूप होता है। प्रेम आधारित, मानवीय दयालुता, सामाजिक न्याय एवं आदि तत्व क्रोध, अविश्वास और घृणा व ईर्ष्या को समाप्त कर नेतृत्व की शक्तियों को पुनः खोजते हैं और उसे समृद्ध बनाते हैं। दूसरे शब्दों में यह शैली मूल्य आधारित एवं मानवीय गुणों से युक्त होती है।

6.3.7 सहभागी शैली Participative Style - इस शैली में आधीनस्थों एवं कर्मचारियों से प्राप्त आगतों को भी महत्व दिया जाता है, परन्तु अन्तिम निर्णय सहभागी नेतृत्व के आधार पर ही लिया जाता है। यह शैली कर्मचारियों को उत्साहित और प्रेरणा शक्ति को जागृत करती है क्योंकि निर्णयन प्रक्रिया में उनका भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। कर्मचारियों को यह अनुभव होता है कि उनके अभिमतों को भी महत्व दिया जाता है। जब संगठन के भीतर कोई परेशानी नहीं होती क्यों कि वे भी इस परिवर्तन को लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब कर्मचारियों द्वारा संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति में असफलता प्राप्त होती है तब प्रबन्धक द्वारा कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने अथवा उनका त्रुटियों को सुधारने के लिए अपनाये जाने वाले उपायों के सन्दर्भ में कर्मचारियों द्वारा कोई बाधा नहीं खड़ी की जाती। लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में यह शैली समूह के सदस्यों की वैचारिक भिन्नता को भी पूर्ण महत्व प्रदान करती है ताकि प्रत्येक क्रिया एवं अन्तिम उत्पाद की गुणवत्ता बनी रहे। प्रर अधिकारियों के साथ-साथ अवरो के विचारों को भी निर्णयन प्रक्रिया में समाहित करना, आधीनस्थ से सलाह लेना, आधीनस्थों की त्रुटियों में सहलशीलता के साथ सुधार करना तथा आधीनस्थों द्वारा परिवर्तनों को स्वीकार करना आदि इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

6.3.8 सहयोगी शैली Cooperative Style -

यह शैली सहभागी शैली के समान ही संगठन के प्रत्येक कर्मचारी की संगठन सम्बन्धी निर्णयों में सम्मिलित करने का प्रयत्न करती है। सभी निर्णय सदस्यों के सहयोग, सुझाव के आधार पर या तो बहुमत आधारित या मतैक्य समझौतों के रूप में लिये जाते हैं। एक सहयोगी नेता सदैव प्रयत्न करता है कि कर्मचारियों में समूह कार्य एवं विश्वास को बढ़ावा दे सके। सहयोगी शैली अपनाने वाला नेता नियंत्रण अथवा शक्तियों उसी सीमा तक अपनाता है जिस सीमा तक आवश्यकताओं की पूर्ति में वे बाधक नहीं बनती। यदि आवश्यकताएँ अधिक प्रभावकारी बनाती हैं तो वह शक्तियों द्वारा कर्मचारियों पर अपनी पकड़ ढीली भी कर देता है। ऐसा संगठन में लक्ष्यों की प्राप्ति एक सहयोगी प्रक्रिया मानी जाती है और यह समूह को भी सशक्त बनाती है। नेता इस विश्वास के साथ कर्मचारियों को स्वतंत्र वातावरण प्रदान करता है कि यदि उनके पास सभी संभाव्य सूचनाएँ हैं तो वे किसी विशेष परिस्थिति में एक सही निर्णय ले सकते हैं। साथ ही नेता इस बात का ध्यान रखता है कि कर्मचारियों को निर्णय लेने में कोई बाधा प्रवर अधिकारियों द्वारा न पहुँचायी जाय

बल्कि उन्हें आवश्यक सुविधाएँ भी प्रदान की जाया यह शैली लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में कर्मचारी और नेता को एक दूसरे के बेहद निकट ला देती है और समानता व सशक्तिकरण के दर्शन को संगठन के भीतर मूर्त रूप प्रदान करती है। जिसके माध्यम से यह प्रवर प्रशासकों एवं आधीनस्थों के मध्य सामान्यतया पाये जाने वाले अविश्वासों को कम कर देती है। इस शैली को अपनाने वाले नेता में जो प्रमुख गुण पाये जाते हैं, वे हैं-

- प्रेरणात्मक वचनबद्धता एवं क्रियाएँ,
- सहयोगियों की समस्याओं का समाधान ढूँढने वाला,
- वृहद स्तर पर समर्पण को बढ़ावा देना,
- आशाओं एवं सहभागिताओं को स्थिरता के साथ बनाये रखना।

इस प्रकार सहयोगी निर्णयन प्रजातांत्रिक होता है और वृहद विचार-विमर्श के पश्चात् मतैक्य के साथ बहुमत आधारित होता है। सामान्यतया निर्णयन प्रक्रिया में मतैक्य स्थापित करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है, परन्तु इस शैली पर आधारित होने से निर्णयन प्रक्रिया सरल, मतैक्य आधारित और जनतांत्रिक हो जाती है।

6.4 क्रियाकलाप

1. नेतृत्व की शैली से आप क्या समझते हैं?
2. नेतृत्व की विभिन्न शैलियों के गुण तथा दोषों पर एक टिप्पणी लिखिये।
3. नेतृत्व की किस शैली को आप अपनी शैक्षिक संस्था के विकास के लिए उपयुक्त मानते हैं और क्यों?

6.5 संदर्भ एवं सहायक पुस्तक सूची

1. Terry, G.R. (1954). Principles of Management, Illinois, Richard, D. Trwin. Inc., Homewood.
2. Tannenbaum & Schmidt, W. 'How to choose a leadership Pattern, Harvard Business Review.
3. Koontz, Harold & O' Donnel, Cyril. Essentials of Management, New York, Tata Mc. Graw Hill.
4. Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.
5. Hughes, Richard L., Gennett, R.C. & Curphy, Gordon J. Leadership, Enhancing the lessons of Experience (Sixth edition) New York, Tata Mc Graw Hill.
6. Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
7. Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition). Jaipur Rajasthan Hindi Granth Academy

इकाई 7 नेतृत्व का मापन

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 नेतृत्व का मापन

7.4 नेतृत्व के मापन हेतु प्रयुक्त उपकरण

7.4.1 नेतृत्व कौशल अनुसूची

7.4.2 कम वरीयता प्राप्त कर्मचारी पैमाना

7.4.3 नेता-सदस्य विनिमय उपकरण

7.4.3 बहुकारक नेतृत्व प्रश्नावली

7.4.4 नेतृत्व व्यवहार वर्णन प्रश्नावली

7.4.5 नेतृत्व अभिमत प्रश्नावली

7.4.6 पर्यवेक्षकीय व्यवहार वर्णन प्रश्नावली

7.4.7 नेतृत्व प्रभावशीलता तथा अनुकूलता वर्णन प्रश्नावली

7.4.8 नेतृत्व क्रियाएँ अनुसूची

7.5 निबंधात्मक प्रश्न

7.6 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में उच्च अधिकारियों अथवा नेता द्वारा आधिनस्थ अथवा सहकर्मियों के हृदय को जीतने वाला, उनका सहयोग व परामर्श, पुरस्कार-दण्ड देने, अनुशासन बनाये रखने वाला व्यावहारिक व्यक्तिक अथवा अर्जित गुण, परिस्थितियों पर आधारित होता है, शैक्षिक नेतृत्व कहा जाता है। सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल शिक्षा के विकास, सामूहिक कार्यक्रम में समन्वय, शिक्षा में नियोजन एवं संलग्नता की सफलता हेतु शैक्षिक नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर उन्नति, विकास, विद्यालय की प्रगति हेतु एक कुशल नेता की आवश्यकता होती है। एक शैक्षिक नेता सामाजिकता, सामाजिक जागरूकता बनाये रखने, सामाजिक विशेषताओं के अनुकूल विद्यालय की व्यवस्था करने, उच्च शैक्षिक प्रबन्धन हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय प्रबन्धन में प्रबन्धक अथवा प्रधानाचार्य एवं कक्षा स्तर पर अध्यापक नेता की भूमिका निभाता है।

किसी भी शैक्षिक संस्था में नेतृत्व संस्थागत लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कार्य परिवेश को इस प्रकार निश्चित करता है कि प्रधानाचार्य, शिक्षक, गैर-शिक्षण त्तर कर्मचारी एवं छात्र सभी शैक्षिक संस्था के लक्ष्य की प्राप्ति

हेतु तत्पर हो कर कार्य करते हैं। चूँकि एक शैक्षिक संस्था के उत्थान से समाज का उत्थान जुड़ा होता है अतः शैक्षिक नेता का उत्तरदायित्व बहुत अधिक जटिल एवं महत्वपूर्ण होता है। शैक्षिक संस्था के प्रबन्ध में शैक्षिक नेतृत्व निहित है तथा शैक्षिक नेतृत्व में संस्थागत लक्ष्य को प्राप्त करने के दक्ष एवं प्रभावशाली तरीके निहित होते हैं।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- नेतृत्व मापन की आवश्यकता एवं महत्व को जान सकेंगे
- नेतृत्व मापन के कार्यों को समझ सकेंगे
- नेतृत्व मापन से परिचित हो सकेंगे।
- नेतृत्व मापन में प्रयुक्त विभिन्न उपकरण के बारे में जान सकेंगे।
- नेतृत्व मापन में विभिन्न उपकरणों के महत्व को जान सकेंगे।

7.3 नेतृत्व का मापन

किसी शैक्षिक संस्थान की सफलता, उसके छात्रों की शैक्षिक तथा अन्य क्षेत्रों में उपलब्धि एवं कर्मचारिय/शिक्षक का व्यावसायिक विकास, उनकी कार्यसंतुष्टि, कार्य समर्पण, निष्ठा आदि संस्थागत नेतृत्व पर आधारित होता है। इसके अतिरिक्त उपयुक्त शिक्षण अधिगम वातावरण का निर्माण भी कुशल नेतृत्व पर निर्भर करता है। अतः एक संस्था के सफल प्रदर्शन के लिए कुशल व प्रतिभाशाली नेतृत्व आवश्यक होता है तथा नेतृत्व को बेहतर बनाने के लिये नेतृत्व मापन की आवश्यकता होती है जो संस्था में उच्च अधिकारियों शिक्षको/कर्मचारियों तथा स्वयं द्वारा किया जाता है।

नेतृत्व मापन द्वारा ही शैक्षिक नेता का व्यक्तिगत विकास संभव हो पाता है क्योंकि मापन द्वारा उनके कार्य-व्यवहार के कमजोर पक्ष की पहचानकर उपयुक्त प्रशिक्षण एवं विकास कार्यक्रम द्वारा व्यावसायिक विकास के अवसर दिये जा सकते हैं। प्रोन्नति संबंधी निर्णय लेने में तथा संस्था में उपयुक्त कार्यसंस्कृति के वातावरण को विकसित करने के लिए भी नेतृत्व मापन की मदद ली जाती है। संस्था में नवाचार लागू करने में उपलब्ध संसाधन के छात्र हित हेतु अधिकतम उपयोग हेतु, छात्र एवं अभिभावक/समाज की आकांक्षाओं व अपेक्षाओं को संतुष्ट करने के लिए भी नेतृत्व मापन आवश्यक होता है।

नेतृत्व गुणों, शैलियों, व्यवहारों आदि सभी के अध्ययन के पश्चात् नेतृत्व के मापन का अध्ययन भी आवश्यक है। गुणों, शैलियों, व्यवहारों की पहचान भी मापन द्वारा ही होती है। नेतृत्व के मापन के माध्यम से नेतृत्व के गुण दोषों आदि का ज्ञान प्राप्त होता है, विभिन्न शैलियों की विशेषताएँ ज्ञात होती हैं और साथ ही संगठन के

उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किस प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता होती है इसका उत्तर भी प्राप्त हो जाता है। नेतृत्व मापन या मूल्यांकन द्वारा ही नेतृत्व प्रशिक्षण का कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है क्योंकि इसके द्वारा ही उन प्रभावी शैलियों तथा व्यवहारों का ज्ञान प्राप्त होता है जो किसी नेता को परिस्थिति विशेष में प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान करने लायक बनाती है।

नेतृत्व मापन के कार्य-

नेतृत्व मापन के मुख्य रूप से तीन कार्य होते हैं-

1. कर्मचारियों /अधीनस्थ का प्रबंधन जिससे उनके समय, समस्या एवं कोशल का बेहतर उपयोग संस्थागत उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया जा सके।
2. अधीनस्थ का व्यावसायिक विकास करना।
3. संस्था का विकास करना।

नेतृत्व मापन का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि नेतृत्व का प्रारंभिक काल से ही अपेक्षाकृत सरल विधियों जैसे कि-उच्च अधिकारियों द्वारा प्रेक्षण, व्यवहार जाँचसूची, मूल्यांकन आदि के द्वारा नेतृत्व के कार्य, कर्तव्य तथा प्रोन्नति का निश्चित किया जाता था। परंतु उक्त विधियाँ नेतृत्व मापन के क्षेत्र में विश्वसनीय एवं वैध नहीं थीं। अतः अधिक विश्वसनीय, वैध तथा व्यापक मापन विधियों की आवश्यकता महसूस की गई जो अधिक विस्तृत रूप में नेतृत्व को मापन करें। नेता के गुण, व्यवहार, परिस्थिति, छात्र-उपलब्धि, नेतृत्व कार्यविधियाँ आदि कुछ बिंदु हैं जिनके आधार पर नेतृत्व का मापन किया जाता है।

नेतृत्व मापन हेतु सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न उभरता है कि आखिरकार नेतृत्व के किन पक्षों का मापन किया जाये और किन पक्ष का नहीं? सामान्यतः मापन उपकरण नेतृत्व व्यवहार तथा कार्य के मापित करने के बदले नेतृत्व गुण के मापने पर आधारित होते हैं। विशेष रूप से शैक्षिक संस्थाओं में छात्र-अधिगम, अभिभावक तथा छात्र संतुष्टि, विद्यालय-समुदाय संबंध आदि कुछ ऐसे बिन्दु हैं जिन पर नेतृत्व मापन को केन्द्रीकृत होना चाहिए।

शैक्षिक संस्थानों में शैक्षिक नेता (प्रशासक) से की जानेवाली कार्य अपेक्षाओं एवं उसके द्वारा किये गये कार्यों के मापन हेतु प्रयास सदियों से जारी है। शैक्षिक नेतृत्व की विभिन्न परिभाषाओं तथा सिद्धान्त के आधार पर नेतृत्व को 1930 से 1950 तक मुख्यतया उपहार माना गया जिसके लिए कुछ आवश्यक गुण महत्वपूर्ण होते हैं।

अतः मुख्यतया नेतृत्व मापन की शुरुआत गुण सिद्धान्त से मानी जाती है। अन्य नेतृत्व सिद्धान्त जैसे-व्यवहारात्मक सिद्धान्त, परिस्थितियात्मक अथवा स्थितिपरक सिद्धान्त तथा कुछ नवीन सिद्धान्त जैसे कि रूपान्तरकारी नेतृत्व सिद्धान्त (Transformational Leadership Theory), मूल्य आधारित नेतृत्व (Value Based) सिद्धान्त के द्वारा भी नेतृत्व को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है। किन्तु अब तक नेतृत्व का

कोई एक सर्वसम्मान सिद्धान्त नहीं होने से नेतृत्व मापन की भी कोई एक सर्वमान्य विधि विकसित नहीं हो पायी है। नेतृत्व मापन के उपकरण तथा विधियाँ संबंधित नेतृत्व सिद्धान्त पर आधारित होते हैं। विभिन्न सिद्धान्त के अंतर्गत नेतृत्व के विभिन्न पक्ष का अध्ययन किया जाता है। नेतृत्व के क्षेत्र में कई सिद्धान्त प्रचलित है जैसे-

1. गुण सिद्धान्त
2. व्यवहारात्मक सिद्धान्त
3. परिस्थितिनात्मक या स्थितिपरक सिद्धान्त
4. सामाजिक विनिमय सिद्धान्त
5. रूपान्तरण सिद्धान्त
6. मूल्य आधारित सिद्धान्त, आदि।

नेतृत्व सिद्धान्त के तहत किसी संस्था में नेतृत्व का मापन इस तथ्य पर निर्भर करता है कि नेतृत्व संबंधी दिन पक्षों का मापन किया जाता है। नेतृत्व सामान्यतया पर्यवेक्षको व प्रशासको के नेतृत्व व्यवहार/गुण/कोशल/क्रिया पर आधारित होता है

नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्त के लिए प्रश्नावली, चुनाव, नामांकन, कोटिक्रम (Ranking), नेतृत्व व्यवहार मापन/प्रेक्षण, पूर्व नेतृत्व व्यवहार मापने आदि विधियों का प्रयोग शिक्षा जगत में किया जाता रहा है। उपर्युक्त विधियों द्वारा नेतृत्व का मापन विभिन्न सिद्धान्तों के अंतर्गत निम्न पक्ष/बिन्दुओं पर किया जाता है-

- नेता एवं अधिनस्थ के गुण
- नेता एवं /अधिनस्थ का व्यवहार
- परिस्थितियाँ
- नेता एवं अधिनस्थ की अन्तर्क्रिया
- करिश्मा तथा अन्य पक्ष

नेतृत्व मापन के उपलब्ध उपकरण नेतृत्व क्षेत्र में कार्य की शुरुआत करने वाले प्रारंभिक नेताओं /प्रशासको के नेतृत्व का मापन करने के साथ ही शिक्षा क्षेत्र में स्थापित नेताओं के नेतृत्व के मापन कार्य भी करते हैं।

नेतृत्व के मापन हेतु रेटिंग स्केल, प्रश्नावली, अनुसूची आदि कई उपकरणों को प्रयोग में लाया जाता है। नेतृत्व मापन हेतु प्रयुक्त कुछ उपकरण निम्न हैं:

7.4.1 नेतृत्व कौशल अनुसूची

नेतृत्व कौशल अनुसूची का निर्माण Karnes and Chauvin ने 1985 में किया था। नेतृत्व कौशल अनुसूची का प्रयोग छात्रों के नेतृत्व कौशल एवं क्षमताओं को मापने हेतु किया जाता है जिससे विद्यालय एवं

समाज छात्र की नेतृत्व प्रतिभा के बारे में जान कर भविष्य में उन्हें कुशल नेतृत्व के अवसर तथा प्रशिक्षण प्रदान कर उनके विकास में योगदान दे सके। इस अनुसूची में 125 नेतृत्व संबंधी कथनों का लिफ्ट मापनी पर मापन छात्र तथा अध्यापको द्वारा किया जाता है। उक्त 125 कथन नेतृत्व के नौ पक्ष -नेतृत्व के आधार, लिखित सम्प्रेषण, वाक क्षमता, मूल्य स्पष्टता, निर्णयन कौशल, समूह गतिकी कौशल, समस्या समाधान कौशल, व्यक्तिगत विकास कौशल, नियोजन कौशल से संबंधित होते हैं। इस अनुसूची के द्वारा नेतृत्व मापन से नेतृत्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता जाँचने में तथा नेतृत्व में छात्र निर्धारण में सहायता मिलती है।

7.4.2 कम वरीयता प्राप्त कर्मचारी पैमाना Least Preferred Coworker Scale

इस पैमाना के द्वारा नेतृत्व का कार्य-आधारित तथा संबंध-शैलियों का विश्लेषण कर नेतृत्व का मापन किया जाता है। प्रासंगिकता सिद्धान्त पर आधारित यह 8 पद द्विध्रुवीय विश्लेषण पैमाना जाँच करता है कि नेतृत्व/प्रशासक किस संस्थागत कर्मचारी के साथ कार्य करने में कठिनाई का अनुभव करता है। इस स्केल पर उच्च अंक दर्शाते हैं कि नेता व्यक्तिगत संबंध को वरीयता देते हैं, जबकि कम अंक उत्पादन व कार्य कर बल देते हैं।

7.4.3 नेता-सदस्य विनिमय उपकरण Leader Member Exchange Instrument

नेता-सदस्य विनिमय उपकरण किसी संस्था के मध्य एवं निम्न प्रबंध स्तर पर नेता एवं अधीनस्थ तथा स्वयं अधीनस्थ के मध्य सामाजिक संबंध का विश्लेषण करने के लिए उपयोग में लाया जाता है कि वे दोनों पक्ष एक-दूसरे की अपेक्षाओं को किस स्तर तक सन्तुष्ट करते हैं। यह उपकरण सामाजिक विनिमय सिद्धान्त पर आधारित है जिसमें सात पदों पर नेता एवं अधीनस्थ/सदस्य के संबंध की जाँच अधीनस्थ द्वारा दिये गये जवाबों से होती है। वस्तुतः यह उपकरण उच्च प्रबंध स्तर पर कार्य नहीं करता है। यह उपकरण उच्च तनाव युक्त संस्था वातावरण के लिए भी उपयुक्त नहीं होता है क्योंकि नियम कठोरता एवं तनाव युक्त संस्था में नेता अधीनस्थ सामाजिक संबंध को प्रभावित करते हैं। यह पदानुक्रम (Hierarchical) संस्थागत संरचना के लिए उपयुक्त है न कि समतल (Flat) संस्थागत संरचना के लिए।

7.4.3 बहुकारक नेतृत्व प्रभावली

बहुकारक नेतृत्व प्रभावली का निर्माण Bass and Avolio ने 1985 में किया था। नवीन करिश्माई/नवीन नेतृत्व सिद्धान्त जैसे-मूल्य आधारित नेतृत्व सिद्धान्त, रूपान्तरण नेतृत्व सिद्धान्त आदि पर आधारित है। पाँच-पद लिफ्ट पैमाने पर आधारित यह उपकरण नेतृत्व के गुणों तथा इन गुणों के अधीनस्थ पर को अधीनस्थ द्वारा प्राप्त उत्तरों से जाँचना है। यह उपकरण विभिन्न नेतृत्व शैलियों जैसे रूपान्तरण (transformational), अहस्तक्षेपी (laissez faire) आदि का किसी नेता के कार्य प्रदर्शन में अध्ययन करता है। शैक्षिक तथा अन्य संस्थाओं जहाँ नेतृत्व अधीनस्थ के कार्य-व्यवहार तथा प्रदर्शन को प्रभावित करता है इस उपकरण को प्रयोग में लाया जा सकता है किंतु नौकरशाही वातावरण (bureaucratic environment) वाली संस्थाओं जहाँ

नियम व संरचना प्रमुख होते हैं तथा नेतृत्व का अधीनस्थ पर कम प्रभाव पड़ता है, इस उपकरण का प्रयोग उचित नहीं होता है।

7.4.5 नेतृत्व व्यवहार वर्णन प्रश्नावली (द लीडर बिहेवियर डिस्क्रिप्शन क्वेश्चनर LBDQ): LBDQ स्टेट यूनिवर्सिटी में हेम्फिल एवं कून्स द्वारा निर्मित किया गया। यह उपकरण समूह के सदस्यों द्वारा नेतृत्व व्यवहार के दो आयाम इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर (IS) एवं कन्सीडरेशन (C) पर नेता के व्यवहार को परिभाषित करता है। इसमें प्रत्येक आयाम के 15 कथनों को पंच बिन्दू पैमाने- I Always, After, Occasionally, Seldom, Never पर मापित किया जाता है। यहाँ कन्सीडरेशन के तहत नेता एवं अधीनस्थों के मध्य सम्मान, विश्वास, दोस्ती एवं गर्मजोशी पूर्ण संबंधों को स्थान मिलता है। जहाँ नेता ओपचारिक एवं समाजवादी नहीं होता है एवं वह अधीनस्थों से सहानभूति रखता है। इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर के तहत नियम आधारित संस्थागत संरचना, सम्प्रेषण एवं कार्य करने के तरीकों से नेतृत्व अपने अधीनस्थों से कार्य पूर्ण करवाता है। शोध में ज्ञात हुआ है कि इन दोनों में से किसी एक आयाम पर उच्च अंक प्राप्त करने वाले नेता को अधीनस्थों तथा उच्च अधिकारियों द्वारा पूर्ण नहीं माना जाता है। किसी नेता के व्यवहार में इन दोनों आयामों का मेल महत्वपूर्ण होता है।

इस उपकरण के द्वारा निम्नलिखित चार प्रबन्धकीय शैलियों का ज्ञान होत है-

1. हाई इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर, हाई कन्सीडरेशन HIS, HC
2. लो इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर, हाई कन्सीडरेशन LIS, HC
3. लो इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर, लो कन्सीडरेशन LIS, LC
4. हाई इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर, लो कन्सीडरेशन HIS, LC

7.4.5 नेतृत्व अभिमत प्रश्नावली (द लीडर ओपिनियन क्वेश्चनर LOQ): इस उपकरण में दो मुख्य तत्वों स्ट्रक्चर एवं कन्सीडरेशन पर नेता के गुणों का मापन 40 कथनों में पंच बिन्दू पैमाने पर किया जाता है। इस उपकरण का विकास साइन्स रिसर्च एसोसिएट्स, शिकागो द्वारा 1960 में किया गया। इसमें अंकों का विस्तार शून्य से चार तक होता है।

7.4.6 पर्यवेक्षकीय व्यवहार वर्णन प्रश्नावली (सुपरवाइज़री बिहेवियर डिस्क्रिप्शन SBD): यह उपकरण उच्च अधिकारियों के व्यावहारों का निम्न अधीनस्थों द्वारा प्रेक्षण का मापन करता है। इसको इ0ए0 फ्लैशमैन द्वारा A leader behaviour description for industry के नाम से स्टौगडिल (एडीटेड) की ' Leader Behaviour : Its description & measurement में प्रकाशित किया गया। यह 48 कथनों की प्रश्नावली है जो इनिशियेटिंग स्ट्रक्चर एवं कन्सीडरेशन दो आयामों पर नेतृत्व का मापन करती है। उक्त 48 कथनों का पंच बिन्दू पैमाने पर (0 से 4) मापन किया जाता है।

7.4.7 नेतृत्व प्रभावशीलता तथा अनुकूलता वर्णन प्रश्नावली (लीडर इफेक्टिवनेस एण्ड एडैप्टेबिलिटी डिस्क्रिप्शन LEAD): इस उपकरण का विकास हरसे तथा ब्लेडचार्ड द्वारा 1978 में किया गया। यह नेतृत्व व्यावहार के तीन पक्षों नेतृत्व शैली, नेतृत्व शैली का विस्तार एवं शैली अनुकूलनशीलता का मापन करता है। यह उपकरण स्थितिजन्य नेतृत्व सिद्धान्त पर आधारित है। यह आधिनस्थ कर्मचारियों पर यह जानने के लिए प्रशासित किया जाता है कि वे प्रबन्धक की नेतृत्व शैली का प्रेक्षण किस प्रकार करते हैं। इसमें 12 कथन होते हैं। प्रत्येक परिस्थिति के लिए चार विकल्प होते हैं जिनमें से एक प्रबन्धक को चुनना होता है।

7.4.8 नेतृत्व क्रियाएँ अनुसूची -

नेतृत्व अनुसूची का निर्माण Pisner & Kouzes ने 1993 में किया था। इस अनुसूची में पंचपदीय लिंकर्ट पैमाने पर 30 पदों द्वारा पाँच नेतृत्व क्रियाओं का मापन किया जाता है। इन पंच नेतृत्व क्रियाओं में प्रक्रिया को चुनोती देना, सम्मिलित दृष्टिकोण को प्रेरित करना, ओरों को कार्य करने के लिए तैयार करना/क्षमताएँ विकसित करना, प्रतिदर्शन देना, प्रोत्साहन देना सम्मिलित है।

LP3I-Self नेता स्वयं LPI-Observer अधिनस्थों की प्रतिक्रिया को मापित करता है। इस अनुसूची का उद्देश्य संस्था में वास्तविक नेतृत्व व्यवहार का मापन होता है। साथ ही तथा रूपान्तरण नेतृत्व शैलियों में अन्तर ज्ञान करने का कार्य भी यह अनुसूची करती है।

7.5 निबंधात्मक प्रश्न

1. नेतृत्व मापन हेतु कौन-कौन से उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं?
2. LBDQ एवं SBD से आप का समझते हैं?
3. नेतृत्व मापन क्यों आवश्यक है?
4. नेतृत्व मापन के कौन कौन से कार्य हैं?

7.6 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

1. Terry, G.R. (1954). Principles of Management, Illinois, Richard, D. Trwin. Inc., Homewood.
2. Tannenbaum & Schmidt, W. 'How to choose a leadership Pattern, Harvard Business Review.
3. Koontz, Harold & O' Donnell, Cyril. Essentials of Management, New York, Tata Mc. Graw Hill.
4. Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.

5. Hughes, Richard L., Gennett, R.C. & Curphy, Gordon J. Leadership, Enhancing the lessons of Experience (Sixth edition) New York, Tata Mc Graw Hill.
6. Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
7. Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition). Jaipur Rajasthan Hindi Granth Academy.

इकाई 8 शैक्षिक नियोजन Educational Planning

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 शैक्षिक नियोजन: अर्थ एवं परिभाषा
- 8.4 शैक्षिक नियोजन के उपागम
- 8.5 परिप्रेक्ष्य नियोजन
- 8.6 संस्थागत नियोजन
- 8.7 क्रियाकलाप
- 8.8 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

वर्तमान गत्यात्मक अर्थव्यवस्थाओं के परिवेश में नियोजन की आवश्यकता किसी भी संस्था के संगठन, संचालन, नियंत्रण एवं विकास हेतु महत्वपूर्ण स्थान रखती है। शाब्दिक अर्थ में नियोजन से तात्पर्य है, किसी भी कार्य को कैसे करना है, क्या करना है, कब करना है एवं किसके द्वारा किया जाना है, इसकी रूपरेखा पहले से ही तैयार कर लेना। चूंकि वर्तमान परिवेश में अर्थव्यवस्थाओं में बहुत ही शीघ्रता से परिवर्तन होते रहते हैं, इसलिए इन परिवर्तनों के अनुरूप संस्थाओं के कुशल संगठन, संचालन एवं नियंत्रण हेतु नियोजन अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। नियोजन भविष्य में किये जाने वाले कार्यों के लिए पहले से तैयार की जाने वाली रूपरेखा है, ताकि अधिकतम संभावित साधनों के द्वारा कुछ विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। अतः हम कह सकते हैं कि नियोजन भावी कार्यों की बुद्धिमत्तापूर्ण तैयारी है। एक कुशल प्रबंधक की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है, कि वह भविष्य में होने वाले परिवर्तनों एवं आने वाली समस्याओं का पूर्वाभास करके उनसे निपटने हेतु आवश्यक क्रियाओं की योजना पहले से ही बना ले। प्रबंधन के क्षेत्र में नियोजन प्रथम महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। संगठन चाहे छोटा हो अथवा बड़ा उसमें नियोजन की आवश्यकता होती है। बिना इसके संगठन के किसी भी कार्य को सुचारू ढंग से संचालित नहीं किया जा सकता और न ही कर्मचारियों की क्रियाविधि को नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार नियोजन प्रबंधन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें प्रबंधन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निश्चित कार्य प्रणाली पूर्व में ही तैयार कर ली जाती है, ताकि लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- शैक्षिक नियोजन की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- शैक्षिक नियोजन के अर्थ से परिचित हो सकेंगे।
- शैक्षिक नियोजन के विभिन्न उपागमों के बारे में जान सकेंगे।
- परिप्रेक्ष्य नियोजन के अर्थ एवं प्रकारों को बता सकेंगे।
- संस्थागत नियोजन की प्रक्रिया एवं महत्व के बारे में जान सकेंगे।

8.3 शैक्षिक नियोजन: अर्थ एवं परिभाषा

वर्तमान वैश्विक युग में जहाँ शिक्षा को भी एक सेवा प्रविधि (Service process) माना जा रहा है नियोजन एक महत्वपूर्ण केंद्रबिंदू बन गया है। विशेषतः विश्व की सबसे बड़ी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में शैक्षिक नियोजन आवश्यक है क्योंकि शैक्षिक प्रबंधन प्रक्रिया का यह प्रारंभिक चरण है।

शिक्षा में नियोजन अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, क्योंकि यह शिक्षा में परिणामस्वरूप एवं गुणात्मक सुधार के कार्यक्रमों को आधार प्रदान करती है। शैक्षिक नियोजन को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए नियोजन का अर्थ एवं महत्व जान लेना अत्यन्त आवश्यक है, जो कि अग्रलिखित है-

शैक्षिक नियोजन (Educational Planning): शैक्षिक नियोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षा के क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों का अधिक से अधिक लाभ उठाने हेतु किस प्रकार उपयोग किया जाय, का विवरण निहित होता है। शैक्षिक नियोजन ऐसे प्रयासों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है, जिनके माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक, तकनीकी से वैज्ञानिक स्तर तक, बालक से वृद्ध तक सभी के लिए शिक्षा की व्यवस्था करने एवं शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति करना संभव हो पाता है।

शैक्षिक नियोजन वर्तमान समय में भविष्य में प्राप्त किये जाने वाले शैक्षिक लक्ष्यों की तैयारी है। इसके माध्यम से शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं का ज्ञान प्राप्त कर उनके समाधान हेतु आवश्यक तैयारियाँ की जाती हैं। शिक्षा परिवर्तन का एक प्रमुख साधन है अतः इसके नियोजन के माध्यम से उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम सम्भाव्य उपयोग करके विकास की गति को बढ़ावा दिया जा सकता है, सामाजिक बुराइयों में कमी लाकर समाज के पुनर्निर्माण एवं सांस्कृतिक विकास के उच्च स्तर पर पहुँचाकर सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। भारत में शैक्षिक नियोजन का प्रारंभ 1854 के कुछ घोषणापत्र से माना जाता है। 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय नियोजन समिति (National Planning Committee) द्वारा भी नियोजन की अवधारणा दी गई।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहाकार परिषद (Central Advisory Board of Education) का नाम भी नियोजन के क्षेत्र में उल्लेखनीय है। 1950 से नियोजन आयोग (Planing Committee) अनेक पंचवर्षीय योजनाओं तथा वार्षिक योजनाओं के माध्यम से शैक्षिक नियोजन के कार्य को पूर्ण कर रहा है।

शैक्षिक नियोजन की विशेषताएँ : शैक्षिक नियोजन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

शैक्षिक नियोजन वर्तमान में भविष्य की तैयारी है।

इसके माध्यम से शैक्षिक समस्याओं, उनके कारणों एवं समाधानों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

1. शैक्षिक नियोजन एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें पूर्व और पश्च योजनाएँ एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं।
2. शैक्षिक नियोजन शैक्षिक समस्याओं के समाधान के साथ-साथ सांस्कृतिक उत्थान एवं समाज के पुनर्निर्माण में भी सहायक होता है।
3. शैक्षिक नियोजन परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार की शैक्षिक उपलब्धि में सहायक होता है।
4. इसमें तात्कालिक एवं दीर्घकालिक दोनों प्रकार की योजनाओं का समावेश होता है, ताकि निम्न गम्भीरता वाली समस्याओं के समाधान के साथ-साथ अधिक गम्भीर समस्याओं का भी समाधान किया जा सके।
5. शैक्षिक नियोजन परिवर्तन के प्रबंधक के रूप में भी कार्य करता है।

नियोजन: अर्थ, परिभाषाएँ:

वेबस्टर (webster) के अंतर्राष्ट्रीय शब्द कोश ने नियोजन को योजनाओं को बनाने, क्रियान्वयन के कार्य अथवा प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। नियोजन संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनायी जाने वाली क्रियाओं की भविष्यवाणी है। यह पूर्वनिर्धारित क्रियाविधि है। यह भविष्य की क्रियाओं का वर्तमान में प्रक्षेपण है। दूसरे शब्दों में नियोजन भविष्य में की जाने वाली क्रियाओं की एक रूपरेखा प्रस्तुत करता है, ताकि एक निश्चित समय में निश्चित लागत पर, निश्चित परिणाम की प्राप्ति की जा सके।

विशेषज्ञों एवं विद्वानों द्वारा नियोजन को निम्नलिखित दो रूपों में परिभाषित किया जा सकता है-

भविष्य आधारित (Based on Futurity)- “नियोजन भविष्य को बाँधने वाला एक जाल है।” -एलेन

“नियोजन, भविष्य में क्या किया जाना है, इसकी पूर्वधारणा है।” -कून्ट्ज

“नियोजन पूर्वनिर्धारित विनिश्चयीकरण है।”-आर0ल0 एकाफ

“नियोजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा भविष्य में किये जाने वाले कार्यों के लिए निर्णयों के समुच्चय को तैयार किया जाता है जो साधनों के द्वारा लक्ष्य प्राप्त की ओर निर्देशित होते हैं।” ड्रार

"The Planning is the process of preparing a set of decisions for action in the future directed at acting goals by optional means." Dror

चिंतन प्रकार्य (As a thinking function):

“नियोजन बुद्धिमत्ता पूर्ण क्रियाओं हेतु एक चिंतन प्रक्रिया, एक संगठित भविष्यवाणी एवं सत्य एवं अनुभवों पर आधारित दूरदर्शिता है।”-(अलफ्रेड एवं बेट्टी)

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि भविष्य में क्या किया जाना है, इसे वर्तमान में निश्चित करना ही नियोजन है। यह करने से पहले सोचने की प्रक्रिया है। यह एक निश्चित, लिखित अवधारणा है, जिसमें एक उद्देश्य एवं एक क्रिया कथन समाहित होता है। उद्देश्य साध्य हैं एवं क्रिया कथन उस साध्य की प्राप्ति हेतु साधन हैं। दूसरे शब्दों में, उद्देश्य प्रबंधन को लक्ष्य प्रदान करते हैं और क्रिया कथन उस लक्ष्य को साधने हेतु बाण। इस प्रकार सुनिश्चित ढंग से निर्मित योजना कब, क्या, कहाँ, कैसे करना है, इसका वर्णन करती है।

नियोजन प्रक्रिया के चरण (Steps in the Planning Process): नियोजन वृहद रूप से प्रबंधकीय क्रिया है। इसके लिये नियोजनकर्ता को बहुत सारा समय देना एवं प्रयास करना पड़ता है। उन्हें ऐसी युक्तियों को अपनाने की आवश्यकता होती है, जो त्रुटियों एवं महंगी गलतियों को न के बराबर कर सकें अन्यथा ये सम्पूर्ण उद्यम को हानि पहुँचा सकती हैं। इस प्रकार की युक्तियों में निम्नलिखित चरण सम्मिलित होते हैं-

(1) **उद्देश्य निर्धारण:** नियोजन प्रक्रिया का प्रथम चरण है-संगठन के लक्ष्य की पहचान करना। उद्देश्य निर्धारण से पूर्व संगठन को प्रभावित करने वाली आन्तरिक एवं बाह्य गतिविधियों एवं परिस्थितियों का सूक्ष्मता से परीक्षण करना आवश्यक होता है। उद्देश्य स्पष्ट रूप से ये निर्देशित करने वाले होने चाहिए कि क्या प्राप्त करना है, किन क्रियाओं के माध्यम से प्राप्त करना है, किसके द्वारा प्रदर्शन करना है, कैसे और कब उनकी प्राप्ति सम्भव है? दूसरे शब्दों में, प्रबंधक द्वारा संगठन में किये जाने वाले प्रयासों के सम्बन्ध में स्पष्ट दिशा निर्देश दिया जाना चाहिए ताकि सभी क्रियाएँ सही दिशा में सम्पन्न हो सकें।

(2) **रूपरेखा निर्धारण:** उद्देश्य निर्धारण के बाद नियोजन की रूपरेखा का निर्धारण आवश्यक होता है। रूपरेखा वातावरण के सन्दर्भ में पूर्वमान्यताएँ होती हैं जिनमें योजनाएँ निर्मित एवं क्रियान्वित की जाती हैं। इसके साथ ही उपलब्ध आवश्यक संसाधनों की जानकारी, उनकी उपयोगिता की जाँच एवं उनकी कार्य प्रणाली का विश्लेषण एवं मूल्यांकन भी आवश्यक होता है।

(3) **विकल्पों का चयन एवं मूल्यांकन:** उद्देश्य निर्धारण एवं नियोजन की रूपरेखा निर्धारण के पश्चात् वैकल्पिक क्रियाओं की पहचान की आवश्यकता होती है। नियोजन में चयन एक महत्वपूर्ण अवस्था होती है जिसमें उद्देश्य प्राप्ति हेतु की जाने वाले क्रियाओं हेतु उपलब्ध संभावित विकल्पों की जाँच कर उपयोगी विकल्पों का चयन किया जाता है। जिनके संचालन के उपरान्त अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो सकती है।

(4) **चयनित विकल्पों का क्रियान्वयन :** विभिन्न उपलब्ध विकल्पों के मूल्यांकन एवं उपयोगी विकल्प के चयन के पश्चात् उनके क्रियान्वयन की अवस्था आती है। उपयोगी विकल्पों में से भी कुछ का क्रियान्वयन योजना की प्रारम्भिक अवस्था में किया जाता है और कुछ को भविष्य हेतु सुरक्षित रख लिया जाता है ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनका क्रियान्वयन किया जा सके। यही चयनित विकल्प उद्देश्य प्राप्ति में सहायक होते हैं और योजना की दिशा निर्धारित करते हैं।

(5) **सहयोगी योजनाओं का निर्माण :** नियोजन प्रक्रिया में मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ सहायक उद्देश्यों की भी प्राप्ति आवश्यक होती है, बिना इनके मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति संभव नहीं हो पाती। अतः योजना निर्माण

के समय कुछ छोटी-छोटी सहायक योजनाओं का भी निर्माण किया जाता है। उदाहरण स्वरूप किसी उद्यम में एक आधारभूत उत्पादन योजना के संचालन में बहुत सी अन्य चीजों जैसे मशीनों और प्लान्ट की उपस्थिति, कर्मचारियों का प्रशिक्षण, वित्त सम्बन्धी प्रावधान आदि की आवश्यकता होती है। मौलिक योजना की सफलता के लिए इन सहयोगी योजनाओं का सही क्रम में एवं सही समय पर पूरा होना आवश्यक होता है।

(6) सहयोग एवं सहभागिता : किसी भी योजना की सफलता कर्मचारियों की पूर्ण सहभागिता पर निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में प्रबंधक को अपने कर्मचारियों को योजना निर्माण प्रक्रिया में सम्मिलित करना चाहिए। सलाह, शिकायत, आलोचना आदि के माध्यम से प्रबंधक को योजना को उसके प्रारम्भिक स्तर पर ही सुधारने का मौका मिल जाता है और चूँकि योजना निर्माण में उनकी सहभागिता रहती है तो योजना के क्रियान्वयन में उनमें आपसी सहयोग बना रहता है और फलस्वरूप योजना सफलतापूर्वक संचालित हो सकती है।

(7) योजना का मूल्यांकन एवं पृष्ठपोषण : नियोजन का अन्तिम चरण क्रियान्वित योजना का मूल्यांकन करना होता है। योजना के क्या लाभ रहे हैं एवं उसमें क्या कमियाँ पायी गयीं, इसकी जाँच की जाती है। इस प्रक्रिया में कर्मचारियों, निवेशकों एवं क्षेत्र विशेषज्ञों से पृष्ठपोषण (थमकडंबा) लिया जाता है। योजना की प्रभावशीलता के लिए उसकी निरन्तर जाँच होनी आवश्यक है। इस प्रकार के मूल्यांकन से प्रबंधन को क्रियान्वित योजना की कमियाँ पता चल जाती हैं और उसके लिए सुधारात्मक उपाय अपनाने में देर नहीं होती है।

8.4 शैक्षिक नियोजन के उपागम

नियोजन विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु की जाने वाली क्रियाओं की रूपरेखा है। इसमें उद्देश्यों का निर्धारण कर विकल्पों की खोज की जाती है, तत्पश्चात् उपयुक्त विकल्पों का चयन कर उनको लागू कर अभीष्ट परिणाम प्राप्त करने की आशा की जाती है। मूल्यांकन के माध्यम से विकल्पों की उपयुक्तता भी ज्ञात की जाती है साथ ही यह भी ज्ञात किया जाता है कि लक्ष्यों की प्राप्ति कहाँ तक हो पायी हैं और उनमें क्या कमियाँ रह गयी हैं।

शैक्षिक नियोजन के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं का ज्ञान प्राप्त कर उनमें सुधार हेतु अपनाये जाने वाले आवश्यक समाधानों और उनको लागू करने के लिए अपनायी जाने वाली क्रिया-प्रणालियों का ज्ञान प्राप्त होता है। वह विशिष्ट बिन्दू जो केन्द्रीय लक्ष्य का निर्धारण करता है, नियोजन का उपागम कहलाता है। शैक्षिक नियोजन के क्षेत्र में अनेक उपागमों का विकास हुआ है, जिनमें से कुछ प्रमुख उपागम निम्नलिखित हैं-

1. अन्तः शैक्षिक विस्तार उपागम (Intra-educational extrapolation approach)
2. जनांकिकीय प्रक्षेपण उपागम (Demographic Projection approach)
3. मानव शक्ति या मानव संसाधन विकास उपागम (Man-Power or Human Resource Development Approach)
4. सामाजिक माँग उपागम (Social Demand Approach)
5. लागत-लाभ विश्लेषण उपागम (Cost-benefit analysis approach)
6. सामाजिक न्याय उपागम (Social-Justice approach)

1. अन्तः शैक्षिक विस्तार उपागम : इस उपागम के अन्तर्गत शैक्षिक तन्त्र से जुड़ी विभिन्न समस्याओं में से किसी एक विशिष्ट समस्या हेतु आवश्यक लक्ष्यों-उद्देश्यों का निर्धारण कर, विकल्पों की खोज एवं उपयुक्त विकल्पों का चयन कर समाधान हेतु उनका क्रियान्वयन किया जाता है। उदाहरण स्वरूप यदि लक्ष्य एक निश्चित स्तर तक के सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति है तो इस प्रकार के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विद्यालयों का निर्माण, शिक्षकों की पूर्ति, पाठ्य पुस्तकों एवं यूनियफार्म की व्यवस्था आदि उपायों को अपनाया होगा।

लाभ: 1 इस उपागम के माध्यम से शैक्षिक समस्याओं को छोटी-छोटी कई समस्याओं के रूप में बाँट कर उनका पृथक-पृथक समाधान खोजा जाता है।

2 प्रत्येक समस्या से जुड़ी प्रत्येक छोटी-छोटी क्रियाओं, गतिविधियों एवं उपायों का अध्ययन सम्भव है।

3 परिमाणात्मक निहितार्थ का अनुमान लगाया जाता है।

हानि: 1 इस प्रकार के विश्लेषण के लिए अनेकों अनुक्रम सांख्यिकी (थ्रसवू ैजंजपेजपबे) की आवश्यकता होती है, जिनका अध्ययन काफी जटिल होता है।

2 यह उपागम तब और जटिल हो जाता है जब राष्ट्रीय के साथ-साथ क्षेत्रीय और जिला सम्बन्धी भिन्नताओं को ध्यान में रखने का प्रयास किया जाता है।

2. जनांकिकीय प्रक्षेपण उपागम : यह उपागम उस जनसंख्या के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए मौलिक प्राचल (Parameter) प्रदान करता है जिसके लिए भविष्य में शैक्षिक तन्त्र को कार्य करना है। यह उपागम किसी न किसी रूप में शैक्षिक नियोजन के सभी उपागमों के लिए आवश्यक हो जाता है। ऐसे जनांकिकीय तत्व जिनकी भविष्य में किसी शैक्षिक समस्या के समाधान में आवश्यकता होगी, उनका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर यह उपागम लक्ष्यों एवं विकल्पों के निर्धारण में सहायक होता है। जैसे यह ज्ञात करना कि प्राथमिक शिक्षा की प्रारम्भिक आयु क्या है और माध्यमिक शिक्षा से पहले कितना समय बीतता है। इसके माध्यम से उस विशिष्ट जनसंख्या के सम्बन्ध में शैक्षिक नियोजन कैसे और किस मात्रा में किया जाय इसका निर्धारण किया जा सकता है।

लाभ: 1 यह उपागम प्रत्येक स्तर की जनसंख्या का प्रेक्षण कर उनकी शैक्षिक समस्याओं का समाधान सुझाता है।

2 यह प्रत्येक स्तर की जनसंख्या के जनांकिकीय गुणों का पूर्ण गहनता से अध्ययन करता है।

हानि: 1 इस उपागम में त्रुटि के स्रोत शैक्षिक व्यवस्था के उन बिन्दुओं में अधिक होते हैं जहाँ एक आयु समूह के सदस्यों को अनेक शैक्षिक विकल्पों में से चयन करना होता है।

2 जनांकिकीय गुणों की पहचान हेतु विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

3. मानव शक्ति या मानव संसाधन विकास उपागम : इस उपागम का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था की मानवीय शक्ति की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना है। यह शैक्षिक व्यवस्था के उन परिणामों पर ध्यान देता है, जो भविष्य में मानवीय शक्ति की आवश्यकताओं को पूर्ण कर मानव संसाधन का विकास करती हैं। जैसे विभिन्न क्षेत्रों अथवा रोजगार अवसरों में जिस प्रकार के प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है उसी

के अनुरूप उनके परीक्षण एवं शैक्षिक अवसरों की व्यवस्था करना। चिकित्सा के क्षेत्र में आवश्यक चिकित्सकों की संख्या को ध्यान में रखते हुए मेडिकल की शिक्षा एवं मेडिकल कालेजों की व्यवस्था करना। इस उपागम के तीन प्रमुख तत्व पर ध्यान दिया जाता है- भविष्य में मानवीय शक्ति के संगठन को निश्चित करना, मानवीय शक्ति की प्राप्यता एवं पूर्व की निश्चिताओं को भविष्य की निश्चितता से जोड़ना।

लाभ: 1 शैक्षिक व्यवस्था की रिक्तियों और असंतुलन को दूर करने एवं उनमें सुधार करने हेतु मानवीय शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग हो जाता है और इसके लिए विस्तृत सांख्यिकी अध्ययन की आवश्यकता नहीं होती।

2 यह शिक्षाविद् को श्रम शक्ति की शैक्षिक योग्यताओं के भविष्य में विकास हेतु उपयोगी निर्देश देता है।

3 मानवीय शक्ति पर आवश्यकता से अधिक ध्यान देने पर बेरोजगार और अल्प रोजगार की चुनौतियों को दूर करने हेतु शिक्षा की व्यवस्था को एक सही दिशा प्रदान की जा सकती है।

हानि: 1 यह शैक्षिक नियोजन कर्ताओं को सीमित दिशानिर्देश ही प्रदान करता है। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर वास्तव में क्या परिणाम प्राप्त होने चाहिए यह बता पाना इस उपागम के लिए कठिन है।

2 अधिकांश मानवीय शक्ति की आवश्यकता नगरीय रोजगार में होने के कारण नियोजनकर्ताओं का ध्यान भी इसी ओर अधिक होता है। इस कारण नगरों के कम कुशल एवं अकुशल श्रमिकों तथा ग्रामीण इलाकों के श्रमिकों की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं जा पाता।

3 अधिकांश आर्थिक, तकनीकी एवं अन्य अनिश्चिताओं के कारण मानवीय शक्ति के विकास हेतु पूर्ण एवं विश्वसनीय भविष्यवाणी संभव नहीं है।

4. सामाजिक माँग उपागम : किसी भी देश का बाल एवं युवा वर्ग शिक्षा की सामाजिक माँग को प्रकट करता है। वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि के कारण यह माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। अतः नियोजनकर्ताओं को इस बढ़ी हुई माँग को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के क्षेत्र में, विद्यालयों की स्थापना एवं अन्य शैक्षिक सुविधाओं के विकास में नियोजन करना चाहिए।

वैश्विक प्रतिस्पर्धा के वर्तमान युग में बढ़ती हुई शैक्षिक आकांक्षाओं तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या शैक्षिक माँग तथा सामाजिक माँग का परिचायक है। बढ़ती हुई सामाजिक माँग के दबाव के कारण आज शिक्षा में परिणात्मक वृद्धि हो रही है किंतु गुणात्मक विकास नहीं हो पा रहा है।

शैक्षिक नियोजन ही वह प्रक्रिया है जो बढ़ती हुई सामाजिक माँग को संतुष्ट करने का कार्य करता है। जिससे समाज में समरसता तथा प्रगति बनी रहें एवं शिक्षा का वास्तविक विकास हो सके।

इस उपागम का ध्यान इस बात पर रहता है कि शैक्षिक अधिकारियों को विद्यालय एवं सभी विद्यार्थियों, जो प्रवेश की माँग करते हैं एवं प्रवेश पाने की योग्यता रखते हैं, को दी जाने वाली सभी सुविधाओं के क्षेत्र में नियोजन करना चाहिए। अजेन्टा (1987) के अनुसार शिक्षा को अन्य सामाजिक सेवाओं की भाँति एक सेवा मानकर उसमें नियोजन करना चाहिए।

लाभ: 1 यह उपागम नियोजन कर्ताओं को आवश्यक क्षेत्रों का ज्ञान कराता है जिनमें शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

2 यह साधारण जनता की माँगों को पूरा करने वाला उपयुक्त राजनैतिक उपकरण है।

3 जहाँ संसाधन सीमित होते हैं एवं कम संसाधनों में, अधिकांश मात्रा में कई प्रकार की शिक्षा उपयोगी हो, उस अवस्था में नियोजन की यह तकनीक अत्यन्त उपयोगी होती है।

हानि: 1 शिक्षा की कीमत जैसे कारकों पर इस उपागम का कोई नियंत्रण नहीं रहता।

2 अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को किस प्रकार प्राप्त किया जाय, इस सन्दर्भ में यह उपागम कोई दिशा-निर्देश नहीं देता है।

3 अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन मितव्ययता के साथ किया जा रहा है या नहीं, इस पर इस उपागम का कोई नियंत्रण नहीं रहता।

4 शिक्षा में केवल इस उपागम पर बल देने से शिक्षित बेरोजगारी की समस्या बढ़ती है।

5. लागत-लाभ विश्लेषण उपागम : इसे लागत प्रभावशीलता (Cost-effectiveness) तथा प्राप्ति दर उपागम (The rate of Return Approach) भी कहा जाता है। यह उपागम शिक्षा पर होने वाले व्यय को राष्ट्रीय निवेश मानकर शिक्षा द्वारा प्राप्त होने वाले लाभ/उत्पादन पर आधारित होता है। राष्ट्र के सर्वतोन्मुखी विकास हेतु कुशल शैक्षिक मानव संसाधन के उत्पादन पर यह उपागम सर्वाधिक बल देता है। अतः किसी भी राष्ट्र को शिक्षा पर होने वाले निवेश को बढ़ाना आवश्यक है। शिक्षा को रोजगारोन्मुखी एवं उत्पादक प्रक्रिया के रूप में विकसित करने से ही समाज एवं राष्ट्र की उन्नति संभव है।

लागत लाभ उपागम इस बात पर अपना ध्यान लगाता है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर मानवीय विकास हेतु इस प्रकार निवेश किया जाय ताकि वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में सुधार लाने वाला हो। एडेसीना (कमेपदं) (1981) के अनुसार इस उपागम की कुछ मान्यताएँ हैं-श्रमिकों को दी जाने वाली आय उनकी उत्पादकता में भिन्नता को प्रदर्शित करती हैं। उत्पादकता में भिन्नता लोगों द्वारा ग्रहण की जाने वाली शिक्षा के प्रकार एवं मात्रा में भिन्नता दर्शाती है। यह शिक्षा और आय के बीच वास्तविक सम्बन्ध का विश्लेषण करने वाला यंत्र है। इस उपागम में नियोजन दो आधारों पर किया जाता है-

सामाजिक प्राप्ति-दर उपागम (Social Rate of Return): इस उपागम में राज्य द्वारा एक विशेष प्रकार की शिक्षा पर किये जाने वाले निवेश पर ध्यान दिया जाता है। शिक्षा पर आने वाली लागत पूर्णरूप से समाज द्वारा वहन की जाती है और उसका प्रतिफल एक साधारण शिक्षित व्यक्ति को प्राप्त होने वाली आय एवं लाभों की गणना करके प्राप्त किया जाता है।

व्यक्तिगत प्राप्ति-दर उपागम (Private Rate of Return): इस उपागम में विशिष्ट प्रकार की शिक्षा पर निजी निवेश और उस पर प्राप्त होने वाले अपेक्षित परिणामों का अध्ययन किया जाता है। इनकी गणना छात्रों को उनकी शिक्षा के दौरान प्राप्त होने वाले लाभों एवं आय से, जो उन्हें शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त होती हैं, से की जाती है।

लाभ: 1 एक शिक्षित व्यक्ति की आय प्राप्ति की आयु को देखते हुए उनकी बढ़ी हुई उत्पादकता की माप संभव हो पाती है।

2 यह विश्लेषण समाज के शैक्षिक ढांचों को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है जो कि सामाजिक उत्पादों की उत्पादकता को बढ़ता है।

3 यह अधिक से अधिक शिक्षा पर आने वाली लागत और सहायक शिक्षा के फलस्वरूप आय में होने वाली वृद्धि के बीच के संबंधों को दर्शाती है।

हानि: 1 किसी भी प्रकार की शिक्षा में किये जाने वाले निवेश से होने वाले लाभो की माप करना कठिन होता है।

2 सार्वजनिक सेवकों को प्राप्त होने वाली आय उनकी उत्पादकता के बजाय विभिन्न आर्थिक चरों से प्रभावित होती है।

6. सामाजिक न्याय उपागम : यह उपागम सामाजिक नियोजन या सामाजिक विकास के लिए नियोजन भी कहलाता है। समाज में सामाजिक न्याय की व्यवस्था करने में शिक्षा अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। शैक्षिक नियोजन के क्षेत्र में सामाजिक न्याय उपागम समाज में न्यायपूर्ण नियोजन को दर्शाता है। अर्थात् समाज के प्रत्येक वर्ग के हित एवं विकास हेतु नियोजन किया जाय ताकि समाज के उच्च वर्ग के साथ-साथ निम्न वर्ग के उत्थान को प्रोत्साहन मिल सके।

इस उपागम में ऐसी शैक्षिक व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जाता है जो समाज के सभी व्यक्तियों के सामाजिक-आर्थिक विकास को बढ़ावा दे और सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करें। इस हेतु शिक्षा के प्रत्येक स्तर को बढ़ावा दिया जाना आवश्यक है ताकि प्रत्येक स्तर (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर) पर कमजोर वर्ग एवं सीमान्त (Marginalize) व्यक्तियों को आगे आने का मौका मिल सके। इसके अतिरिक्त 6-14 आयुवर्ग के समक्ष छात्र-छात्राओं हेतु अनिवार्य एवं निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा का प्रावधान मध्यान्ह भोजन

योजना, मुक्त पुस्तक तथा यूनिफार्म वितरण, छात्रवृत्ति आदि प्रयास इसी श्रेणी में आते हैं। जो समाज के सामान्य तथा वंचित वर्गों को साथ-साथ शिक्षा प्राप्ति के अवसर सुलभ करवाते हैं।

लाभ: 1 समाज के प्रत्येक वर्ग का उत्थान संभव हो पाता है।

2 शिक्षा के प्रत्येक स्तर का विकास एवं उससे प्राप्त होने वाला प्रतिफल समाज के उत्थान एवं सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देता है।

हानि: 1 सामाजिक उत्थान एवं शिक्षा के प्रत्येक स्तर का विकास तभी संभव हो सकता है, जबकि संसाधनों का कुशलतम आवंटन एवं उनका अधिकतम संभाव्य उपयोग किया जाए, जोकि वास्तविक रूप में बहुत कम देखने को मिलता है।

2 कमजोर वर्ग को आगे लाने की बात की तो जाती है परन्तु वास्तव में उन्हें सदैव हाशिए (डंतहपद) पर रखा जाता है।

8.5 परिप्रेक्ष्य नियोजन

परिप्रेक्ष्य नियोजन से तात्पर्य किसी भी प्रकार की छोटी या बड़ी योजना के लिये परिप्रेक्ष्य अथवा केन्द्र बिन्दू निर्धारित करना। ये योजनाएँ अपनी क्रियाओं द्वारा निश्चित रूप से दीर्घकालीन परिणाम देती हैं। ये योजनाएँ कुछ परिस्थितियों में प्रभावकारी होती हैं एवं कुछ परिस्थितियों में प्रभावहीन। परन्तु दोनों ही परिस्थितियों में उनसे जुड़े परिप्रेक्ष्य की प्राप्ति में कुछ हद तक सफलता प्राप्त हो जाती है। परिप्रेक्ष्य नियोजन एक ऐसी नियोजन व्यवस्था है, जिसमें एक निश्चित केन्द्र बिन्दू के इर्द-गिर्द लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है, विकल्पों की खोज, चयन, मूल्यांकन एवं क्रियान्वयन किया जाता है, तत्पश्चात् योजना का मूल्यांकन एवं पृष्ठपोषण प्राप्त किया जाता है।

परिप्रेक्ष्य नियोजन के प्रकार : परिप्रेक्ष्य नियोजन के प्रकार निम्नलिखित हैं-

(1) सामरिक नियोजन (Strategic Planning): इसे दीर्घकालिक नियोजन भी कहते हैं। इसका केन्द्र बिन्दू सम्पूर्ण व्यवस्था होती है। दीर्घकालिक या सामरिक नियोजन 10 से 20 वर्ष की अवधि का होता है और वृहद परिप्रेक्ष्य पर आधारित होता है। यह संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न स्तर पर निर्मित की जाने वाली योजनाओं को निर्देशित करता है। इसमें योजनाओं के क्रियान्वयन एवं उनका परिणाम देखने का समय मिल जाता है इस कारण भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

(2) अल्पकालीन नियोजन (Short-term Planning): अल्पकालीन नियोजन 3 से 5 वर्ष हेतु किया जाता है। इसका केन्द्र बिन्दू तत्कालिक एवं दबावयुक्त समस्याएँ होती हैं। विशिष्ट एवं लघु उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु यह नियोजन अधिक उपयुक्त होता है।

(3) प्रबन्ध नियोजन (Management Planning): इसका सम्बन्ध उन निर्णयों से होता है जो पहले से निर्मित योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु लिये जाते हैं। यह नियोजन प्रक्रिया का एक अंग है जो लक्ष्यों एवं नीतियों से सम्बन्धित मूल निर्णय लेने के बाद क्रियान्वित किया जाता है। यह नियोजन प्रासंगिकता नियोजन (Contingency Planning) की अवधारणा पर आधारित है, जिसका तात्पर्य है ऐसे विकल्पों की खोजकर उनका चयन करना है जो अनापेक्षित परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर प्रयोग किये जा सकें। यह दीर्घकालीन एवं

अल्पकालीन दोनों प्रकार की योजनाओं में प्रयुक्त किया जाता है और दोनों प्रकार की योजनाओं की प्रभावशीलता प्रबन्ध नियोजन के प्रभावी होने पर निर्भर करती हैं।

(4) आधार-स्तर नियोजन (Grass-Root Planning): शैक्षिक नियोजन अनेक स्तरों पर किया जा सकता है अर्थात् राष्ट्रीय, राजकीय, जिला, ब्लाक या संस्थागत स्तर पर। प्रत्येक स्तर पर उस स्तर से जुड़ी सभी विशेषताओं सुविधाओं, समस्याओं को नियोजन में सम्मिलित करके एक सम्पूर्ण योजना का निर्माण किया जाता है। तभी वह योजना सम्पूर्ण स्तर के लिए लाभदायक सिद्ध होती है। ऐसा करने के लिए आधार स्तर का ही सहारा लिया जाता है, अर्थात् एक विशिष्ट स्तर के नियोजन हेतु उस स्तर से जुड़े सभी आधार बिन्दू के इर्द-गिर्द लक्ष्यों का निर्धारण एवं विकल्पों का क्रियान्वयन किया जाता है। जैसे ब्लाक स्तर नियोजन हेतु स्थानीय स्वार्थों को आवश्यक महत्व दिया जाता है जबकि राष्ट्रीय नियोजन में राजकीय, जिला, ब्लाक या संस्थागत स्तर पर भी योजनाएँ निर्मित की जाती हैं।

(5) क्षेत्र नियोजन (Area Planning): क्षेत्र नियोजन, आधार स्तर नियोजन का ही एक रूप है। क्षेत्र नियोजन में केन्द्र बिन्दू एक विशिष्ट क्षेत्र होता है। जिस पर विकास के दृष्टिकोण से ध्यान दिया जाना आवश्यक होता है। इसमें योजना के क्रियान्वयन का कार्य क्षेत्र विशेष सत्ता को सौंपा जाता है।

8.6 संस्थागत नियोजन (Institutional Planning)

संस्थागत नियोजन किसी संस्था के भीतर संसाधनों के सर्वोत्तम प्रयोग को सुनिश्चित करता है। संस्था अपनी समस्याओं एवं विकास के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को जानती है, इस कारण वह अपनी समस्याओं का समाधान भी ढूँढ़ सकती है। नियोजन के माध्यम से संस्था अपने पास उपलब्ध संसाधनों का अपनी समस्याओं के अनुरूप आवंटन करती है और नीतियों का क्रियान्वयन इस रूप में करती है कि समस्याओं का हल हो सके। संस्थागत नियोजन में शैक्षिक संस्था की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए नियोजन किया जाता है।

संस्थागत नियोजन को परिभाषित करते हुए एम0बी0 बुच (1968) का कहना है, विद्यालयी कार्यक्रमों एवं विद्यालयी क्रियाओं को ध्यान में रखते हुए, विद्यालयी आवश्यकताओं का विचार एवं उपलब्ध संसाधनों के आधार पर किसी शैक्षिक संस्था के विकास एवं सुधार हेतु कार्यक्रम बनाना संस्थागत नियोजन के अन्तर्गत आता है। यह विद्यालय एवं समुदाय में उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलतम (Optimum) उपयोग पर आधारित होता है। इस प्रकार का नियोजन अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन दोनों ही प्रकार की हो सकता है।

संस्थागत नियोजन के लाभ : संस्थागत नियोजन के लाभ निम्नलिखित हैं-

(1) आवश्यकता आधारित न कि अनुदान आधारित : संस्थागत नियोजन संस्था की आवश्यकताओं अथवा समस्याओं पर आधारित होता है न कि संस्था को मिलने वाले अनुदानों पर। संस्था इन अनुदानों का प्रयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करती है और योजना बनाती है।

(2) **संसाधनों का अनुकूलत उपयोग** : इस नियोजन में संस्था को अपने पास उपलब्ध संसाधनों एवं अपनी समस्याओं दोनों का पूर्ण ज्ञान रहता है। अतः संस्था अपने संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग कर पाती है। कौन-सा संसाधन किस समस्या हेतु आवश्यक है इसका ज्ञान होने से नियोजन करते समय संसाधनों का अपव्यय नहीं होने पाता।

(3) **लक्ष्य-परक** : संस्थागत नियोजन संस्था के विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इस नियोजन में संस्था के लक्ष्य ही नियोजन के केन्द्र बिन्दु होते हैं और सम्पूर्ण नियोजन इन्हीं की प्राप्ति हेतु किया जाता है।

(4) **भावी एवं विशिष्ट चेतना** : संस्थागत नियोजन भविष्य में संस्था के विकास एवं समस्याओं के समाधान हेतु निर्मित विशिष्ट योजना है जो कि संस्था की विशिष्ट समस्याओं को दूर करती हैं और भविष्य में संस्था का उत्थान करती है।

(5) **सुधारात्मक प्रेरणा** : यह नियोजन एक सुधारात्मक प्रेरणा के रूप में कार्य करता है जो भविष्य में संस्था द्वारा निर्मित होने वाली अन्य योजनाओं को अतीत की कमियों से दूर रहने की प्रेरणा देता है। अतीत की योजनाओं में आने वाली कमियों को दूर करने के उपाय आने वाली पीढ़ी को समझाता है।

(6) **विद्यालयी सुधार एवं विकास** : विद्यालयी कार्यक्रमों एवं क्रियाओं हेतु आवश्यक उपलब्ध संसाधनों के कुशलतम उपयोग द्वारा यह नियोजन विद्यालय व्यवस्था में सुधार लाता है तथा विद्यालय के उत्थान एवं विकास को प्रोत्साहन देता है। कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, शिक्षण कार्यक्रम, परीक्षा आदि सभी क्रियाओं में आने वाली बाधाओं को दूर करता है।

(7) **सतत् विकास** : संस्थागत नियोजन संस्था में सतत् विकास को प्रोत्साहन देता है। समय-समय पर आने वाली बाधाओं को दूर करने की पूर्व तैयारी करता है।

(8) **प्रजातंत्रीय दृष्टिकोण** : इस प्रकार के नियोजन में प्रबन्धक, आधिनस्थों को भी सम्मिलित करता है। उनके सहयोग, सुझाव आदि सुनता है एवं आवश्यक स्थानों पर उनके सुझावों के आधार पर निर्णय लेता है। अपने निर्णय सदस्यों पर थोपता नहीं है। इस प्रकार इस नियोजन में प्रजातंत्रीय दृष्टिकोण को अपनाया जाता है।

(9) **समुदाय का सहयोग** : संस्थागत नियोजन हेतु संस्था, समुदाय के व्यक्तियों, अभिभावकों, सामर्थ्यवान विशेषज्ञों आदि का सहयोग लेती है, ताकि नियोजन के प्रत्येक स्तर पर छोटी से छोटी समस्या का हल ढूंढा जा सके। साथ ही संसाधनों की अनुपलब्धता की स्थिति में समुदाय द्वारा उनकी पूर्ति की जा सके।

(10) **वैज्ञानिक एवं कार्य-परक** : यह नियोजन वैज्ञानिक विधियों को अपनाते हुए कार्य एवं सेवाओं को केन्द्रीय बिन्दु के रूप में रखता है। इसमें कार्य प्रधानता होती है न कि सम्बन्ध प्रधानता तथा सदस्यों द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ ही महत्वपूर्ण मानी जाती है।

संस्थागत नियोजन की प्रक्रिया : किसी भी विद्यालय के विकास के लिए योजना बनाते समय वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए लक्ष्यों/उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है, तत्पश्चात् आवश्यकताओं की तीव्रता के अनुरूप लक्ष्यों की प्राथमिकता निर्धारित की जाती है। प्राथमिकता के आधार पर लक्ष्यों का चयन हो जाने के बाद कार्यक्रम तय किये जाते हैं, जिनकी क्रियान्वति के आधार पर निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति संभव हो पाती है। कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु विद्यालय संस्था के पास उपलब्ध संसाधनों

शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबंधन Educational Administration & Management, MAED 602 Semester III

का चयन किया जाना चाहिए। संसाधन मानवीय एवं भौतिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। संसाधन चयनित होने के पश्चात् उन्हें कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु उपयोग में लाया जाता है एवं कार्यक्रम को विस्तार दिया जाता है। नियोजन में समय-समय पर कार्यक्रम की प्रगति का मूल्यांकन आवश्यक है जो कार्यक्रम में आने वाली बाधाओं का ज्ञान कराता है। ये मूल्यांकन मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक अथवा वार्षिक हो सकते हैं। मूल्यांकन जितना वैध एवं विश्वसनीय होता है, उतना ही कार्यक्रम की वास्तविक स्थिति का पता चलता है। मूल्यांकन के पश्चात् कार्यक्रम में आने वाली बाधाओं को दूर करने हेतु आवश्यक उपयों को अपनाया जाता है और योजना में आवश्यक संशोधन किया जाता है। इस नियोजन में कार्यक्रमों, उनकी उपलब्धियों का विस्तृत ब्यौरा रखना आवश्यक है इनके आधार पर वर्तमान कार्यक्रमों का उचित मूल्यांकन होता और भावी कार्यक्रमों हेतु आधार प्राप्त होता है। ये प्रगति विवरण भावी योजनाओं हेतु उद्देश्य निर्धारण में सहायक होता है।

अतः स्पष्ट है कि संस्थागत नियोजन शिक्षण संस्था द्वारा अपने विकास एवं प्रगति हेतु अपने उद्देश्यों, आदर्श एवं परम्पराओं तथा प्राप्त संसाधनों द्वारा किये जाने वाले अनुकूलतम प्रयासों की रूपरेखा है।

8.7 क्रियाकलाप-

1. शैक्षिक नियोजन से आप क्या समझते हैं?
2. परिप्रेक्ष्य नियोजन का क्या महत्व है?
3. अपने विद्यालय हेतु संस्थापक योजना का प्रारूप बनाइये।

8.8 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

1. Allen, L.A. (1990). Management and organisation, New York, Mc Graw-Hill Book Company.
2. Koontz, Harold & O'Donnel, Cyril. (2000). Essentials of Management, New York, Tata Mc Graw Hill.
3. Ackoff, R.L. (1970). A Concept of Corporate Planning New York, Wiley.
4. Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.
5. Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
6. Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition) Jaipur, Rajasthan Hindi Granth Academy

इकाई 9 पर्यवेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा और प्रकार

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 पर्यवेक्षण: अर्थ एवं परिभाषा
- 9.4 पर्यवेक्षण के कार्य
- 9.5 पर्यवेक्षण के प्रकार
- 9.6 पर्यवेक्षण के गुण
- 9.7 निबन्धात्मक प्रश्न
- 9.8 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

पर्यवेक्षण प्रबंधन एवं प्रशासन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अभिन्न अंग है। प्रबंधन के प्रमुख कार्यों नियोजन संगठन, निर्देशन, निर्णयन, नियंत्रण, मूल्यांकन आदि में पर्यवेक्षण अतिमहत्वपूर्ण कार्य है जो संस्था के कर्मचारियों के बहेतर कार्य-निष्पादन तथा संस्थागत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक होता है।

प्रबन्धन विभिन्न कार्यप्रणालियों का समूह होता है। नियोजन, संगठन, विभागीकरण, बजटीकरण, मूल्यांकन, नियंत्रण आदि विभिन्न क्रियाओं की पूर्ति के पश्चात् ही प्रबन्धन सफलता प्राप्त करता है। उपरोक्त वर्णित विभिन्न क्रियाओं के समय-समय पर मूल्यांकन एवं उन पर निगरानी रखने हेतु एक ऐसी प्रणाली की आवश्यकता होती है जो इनके कार्या पर नजर रख सके ओर कार्य की सही एवं गलत दिशा के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान कर सके। ये प्रणाली पर्यवेक्षण कहलाती हैं। ये प्रबन्धन से जुड़ी विभिन्न क्रियाओं का समय-समय पर मूल्यांकन करता हैं।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- पर्यवेक्षण के अर्थ को जान पायेंगे।
- पर्यवेक्षण की विभिन्न परिभाषाओं से परिचित हो पायेंगे।
- पर्यवेक्षण के कार्यों को जान पायेंगे।
- पर्यवेक्षण के प्रकारों को जान सकेंगे।
- कुशल पर्यवेक्षण के गुणों से परिचित हो पायेंगे।

9.3 पर्यवेक्षण: अर्थ एवं परिभाषा

पर्यवेक्षण शब्द अंग्रेजी भाषा के Supervision का हिन्दी रूपान्तर है। यह दो शब्दों परि (Super) + अवेक्षण (Vision) से मिलकर बना है। 'Super का तात्पर्य 'असाधारण, अलौकिक' होता है तथा Vision का तात्पर्य 'दृष्टि' होता है। ऐसी दृष्टि जो दिव्य अथवा अत्यन्त सूक्ष्म हो, यह पर्यवेक्षण के अन्तर्गत आता है। किसी संगठन की चहुँमुखी दिशाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने एवं उनके विकास हेतु सुझाव देने को पर्यवेक्षण कहा जाता है। इस प्रक्रिया में दूसरे व्यक्ति, इकाई अथवा सम्पूर्ण संगठन की क्रियाओं का अवलोकन कर उन्हें आवश्यक दिशा-निर्देश एवं विकास हेतु आवश्यक सुझाव दिया जाता है।

“पर्यवेक्षण इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मानव-प्रतिभा का बुद्धिमत्ता पूर्ण उपयोग एवं प्रबन्धकों द्वारा संसाधनों रूपी सुविधाएँ उपलब्ध कराना है जो मानव-प्रतिभा को चुनौतियाँ एवं रुचि प्रदान कर सके।” -

जी0आर0 टेरी

"Supervision is the achieving of desired results by means of the intelligent utilization of human talents and facilitating resources in a manager that provides the greatest challenge and interest to human talents." - *G.R. Terry*

उपरोक्त परिभाषा स्वयं में निम्नलिखित तत्व समाहित किए हुए है-

1. कार्य के दौरान कर्मचारियों की क्रियाओं पर ध्यान रखना।
2. मानव प्रतिभाओं का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग।
3. प्रदर्शन स्तर उच्च करने हेतु कर्मचारियों को प्रेरित करना।
4. अच्छे मानवीय सम्बन्धों को बनाये रखना।

इन तत्वों के माध्यम से स्पष्ट है कि पर्यवेक्षण जहाँ कर्मचारी क्रियाओं का निरीक्षण है वहीं उनको प्रेरित करने, संगठन के भीतर सुव्यवस्थित मानव सम्बन्ध बनाये रखने एवं कर्मचारियों को प्रेरित करने वाली तकनीक भी है। पर्यवेक्षणीय क्रियाएँ वास्तव में संगठन, उसके लक्ष्यों एवं नेतृत्व आदि के आधार पर भिन्न-भिन्न स्वरूप वाली होती हैं। कुछ संगठनों में पर्यवेक्षक की शक्तियाँ असीम होती हैं तो कुछ संगठनों में पर्यवेक्षक संकुचित शक्तियों वाला होता है। पर्यवेक्षण एवं पर्यवेक्षक के विषय में आवश्यक जानकारी हेतु पर्यवेक्षण की विशेषताओं एवं अन्य तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर लेना भी आवश्यक है।

शैक्षिक पर्यवेक्षण (Educational Supervision): शिक्षा के क्षेत्र में किया जाने वाला पर्यवेक्षण शैक्षिक पर्यवेक्षण कहा जाता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण का शिक्षकों, सीखने की परिस्थितियों तथा छात्रों की उन्नति से गहरा सम्बन्ध होता है। शिक्षण की उत्तम विधियों, पुस्तकालय, प्रयोगशाला की सुविधा, क्रीडा स्थल, मानदण्डों के अनुरूप शिक्षकों की नियुक्ति, शिक्षक-छात्र अनुपात, विद्यालय भवन आदि विभिन्न तत्वों का मूल्यांकन शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्तर्गत किया जाता है। इसके माध्यम से पाठ्यक्रम में सुधार तथा निर्माण हेतु शोध पर बल दिया जाता है। छात्रों को आवश्यक व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श देने हेतु भी शैक्षिक

पर्यवेक्षण का विशेष महत्व है। वास्तव में शैक्षिक पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में, शिक्षण संस्थाओं की निरन्तर उन्नति एवं छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु पूर्ण सहायता प्रदान करती है।

शिक्षा शब्द कोष (Dictionary of Education) के अनुसार शैक्षिक पर्यवेक्षण निम्नलिखित तत्वों से जुड़ा हुआ है-

- शिक्षण उद्देश्य, विधियाँ, सामग्रियों का चयन करना।
- पर्यवेक्षकों, शिक्षकों एवं कार्यकर्ताओं को नेतृत्व प्रदान करना।
- व्यावसायिक उन्नति हेतु प्रेरणा प्रदान करना।
- आवश्यक सुधार हेतु मूल्यांकन करना।

“शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षण को सुधारने का एक सुनियोजित कार्यक्रम है।” -एडम्स एवं डिके

“Educational supervision is a planned programme for the improvement of the instruction.”
Adams & Dckey

“पर्यवेक्षण शिक्षण प्रक्रिया का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने तथा निर्देशन देने की एक विधि है। पर्यवेक्षण का अन्तिम उद्देश्य छात्रों को उत्तम शिक्षण सेवा द्वारा सभी स्तरों पर योग्य बनाना होना चाहिए।”

-चेस्टर टी, मैकनवे

“Supervision is the procedure of giving direction and providing critical evaluation of the instructional process. The ending result of all supervision should be to provide students at all levels with better educational services.” -

Chester T. Mcnervey

“पर्यवेक्षण विद्यालय प्रशासन का वह रूप है जिसका सम्बन्ध मुख्य रूप से शैक्षिक सेवा की आशाजनक तथा उपयुक्त उपलब्धियों से होता है।” -ग्लेन जी0आई0 तथा नेटजर

”Supervision is that phase of school administration which deals primarily with the achievement of the appropriate selected instructional expectations of educational service.” -Glang G. Eye & A.L. Netzer

अतः परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शिक्षक-छात्र अन्तःक्रिया में आवश्यक सुधार, उपयुक्त एवं कौशल युक्त शिक्षण विधियों का विकास, पाठ्यक्रम का मूल्यांकन, परीक्षा व्यवस्था को वस्तुनिष्ठ स्वरूप प्रदान करना,

छात्र-सुविधाओं का मूल्यांकन एवं उनमें आवश्यक सुधार लाना, शिक्षण प्रबन्धन को प्रभावी बनाने की दिशा में उपरोक्त क्रियाओं का सम्पादन शैक्षिक पर्यवेक्षण के मूलभूत तत्व हैं। उत्तम शैक्षिक पर्यवेक्षण वही है जो शिक्षकों, छात्रों तथा विद्यालय की समस्त परिस्थितियों को उन्नत करता है। वास्तव में शैक्षिक पर्यवेक्षण वह विशिष्ट सेवा है जो शिक्षकों की कार्य-कुशलता तथा व्यावसायिक नेतृत्व हेतु, पाठ्यक्रम में सुधार तथा शिक्षण स्तर को उचित मानक तक पहुँचाने हेतु एवं छात्रों के समाज के अनुरूप आचरण करने हेतु आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करती है।

9.4 पर्यवेक्षण के कार्य

शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्य:- शैक्षिक पर्यवेक्षण के निम्नलिखित कार्य हैं-

1. नेतृत्व प्रदान करना- वांछित शैक्षिक उद्देश्यों की अधिकतम प्राप्ति हेतु पर्यवेक्षण संस्था के कर्मचारियों को नेतृत्व प्रदान करने का कार्य करता है। सर्वप्रथम लक्ष्य निर्धारण एवं इसके उपरांत कर्मचारियों को उद्देश्यप्राप्ति की दिशा में साथ लेकर चलना पर्यवेक्षण के द्वारा ही संभव हो पाता है साथ ही पर्यवेक्षण समूह के सभी सदस्यों को उपयुक्त परिस्थिति में स्वयं नेतृत्व करने के लिए भी प्रेरित करता है जो कि प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण की पहचान है।
2. उचित निर्देशन प्रदान करना- पर्यवेक्षण का एक अन्य प्रमुख कार्य निर्देशन करना है जिसके तहत प्रजातांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप संस्था के सदस्यों को अपने कौशल, गुण, तथा, विषय ज्ञान के आधार पर कार्य करने के लिए निर्देशित किया जाता है।
3. सम्प्रेषण सम्प्रेषण के उचित माध्यम उपलब्ध करवाकर संस्था के समस्त कर्मचारियों तथा अधिकारियों के मध्य उचित संबंध स्थापित करने का कार्य पर्यवेक्षण का है। सम्प्रेषण द्वारा वह कर्मचारियों तथा अधिकारियों के बीच उत्पन्न होने वाले द्वन्द्व तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को रोककर सामन्जस्यपूर्ण कार्य वातावरण का निर्माण करता है तथा अनुभवों व विचारों के मुक्त आदान-प्रदान को सहज बनाता है।
4. समन्वय संस्था के कर्मचारियों के प्रयासों तथा कार्यों में समन्वय स्थापित करना भी पर्यवेक्षण का ही कार्य है जिसके द्वारा वह सभी को सहयोगी भाव से संस्थागत उद्देश्य प्राप्ति में संलग्न करवा पाता है।
5. मानव संसाधन विकास- शैक्षिक संस्थाओं में विद्यार्थी, शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों के विकास में पर्यवेक्षण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षकों को कुशल नेतृत्व प्रदान कर उनके कौशल एवं ज्ञान का समुचित उपयोग छात्र कल्याण में हो तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का उचित विकास हो इस हेतु पर्यवेक्षण सदा प्रयासरत रहता है।

6. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का विकास- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सभी पक्षों जैसे- छात्र, शिक्षक, कक्षाकक्ष, पाठ्यक्रम, समयसारणी, शिक्षण विधियाँ, बिल संसाधन, उपकरण, मूल्यांकन आदि के विश्लेषण के साथ-साथ उपर्युक्त पक्षों के संभावित अधिकतम विकास से पर्यवेक्षण संबंधित है। शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा ही शिक्षकों के ज्ञान कौशल क्षमताओं तथा योग्यताओं में सुधार लाया जाता है जिससे विद्यार्थियों का उत्तरोत्तर विकास संभव हो सके।
7. वर्तमान रूप में शैक्षिक पर्यवेक्षण प्रजातांत्रिक सिद्धांतों तथा आदर्शों पर आधारित हो गया है जिसके द्वारा शिक्षकों एवं शिक्षणेत्र कर्मचारियों को रचनात्मक आलोचना तथा आवश्यक सुझावों के द्वारा सुधार किया जाता है। अब शैक्षिक पर्यवेक्षण पूर्व की भाँति भय, आशंका एवं आलोचना से त्रस्त न होकर सभी कर्मचारियों को लोकतंत्रात्मक तरीके से साथ लेकर संस्था के विकास में उचित मार्गदर्शक का काम करता है।
8. उपयुक्त मानव-संबंधों का विकास-शैक्षिक पर्यवेक्षण का लोकतांत्रिक अवधारणा पर आधारित होने के कारण यह शिक्षकों के व्यक्तित्व, योग्यताओं, आवश्यकताओं आकांक्षाओं तथा अंतर्संबंधों पर ध्यान देता है। व्यक्ति विभिन्नताओं को उचित महत्व देते हुए शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के विकास में सहायता करता है। जिससे द्वन्द्व की परिस्थितियों को रोकते हुए वांछित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके तथा संस्था में उपयुक्त मानव संबंध बने रहे क्योंकि वास्तव में पर्यवेक्षण एक समूह गतिविधि है। अतः संस्था के विकास के लिए समूह को साथ कार्य करना आवश्यक है।
9. उचित अधिगम वातावरण का विकास- किसी शैक्षिक संस्था को अधिगम वातावरण का विकास करना शैक्षिक पर्यवेक्षण का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य है। संस्था के वातावरण में निहित विभिन्न सामाजिक, मनोवैज्ञानिक व संवेगात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों को निर्णय प्रक्रिया में उचित सहभागिता उपलब्ध करवाना, आवश्यक स्वायत्तता, सहयोग, निर्देशन तथा पुरस्कार की व्यवस्था करना शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्यक्षेत्र का मुख्य बिंदू है। जिसके द्वारा ही अधिगम वातावरण सहज, सरल व विस्तृत होना है।
10. शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति- शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का बहुमुखी विकास करना है एवं इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु शैक्षिक पर्यवेक्षण उत्तरदायी होता है। शिक्षण प्रक्रिया के समस्त पक्षों का विकास कर पर्यवेक्षण छात्र, शिक्षक, एवं समाज को लाभ पहुँचाता है। सामाजिक आकांक्षाओं पर आधारित पाठ्यक्रम, निर्माण, क्रिया प्रधान शिक्षण विधियों के प्रयोग, शिक्षकों की व्यवसायिक उन्नति, वस्तुनिष्ठ एवं वैद्य मूल्यांकन प्रक्रिया के विकास, संसाधन उपलब्धता, उचित संस्थागत वातावरण के विकास द्वारा पर्यवेक्षण राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रयासरत रहता है।

11. कार्यसंतुष्टि का विकास- उपयुक्त प्रशिक्षण देकर शैक्षिक पर्यवेक्षण कर्मचारियों की कार्यसंतुष्टि के भाव का विकास करने में सहायता करता है। यह समय-समय पर सही प्रयासों के लिए प्रशंसा तथा पुरस्कार देकर एवं कर्मचारियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं, समस्याओं एवं आकांक्षाओं पर ध्यान न देते हुए उन्हें विकास के समुचित अवसर उपलब्ध करने से उनमें संस्था के प्रति समर्पण भाव तथा कार्य संतुष्टि का विकास करता है।
12. समय एवं संसाधनों का समुचित उपयोग- सीमित समय एवं संसाधन में लक्ष्यप्राप्ति करने में पर्यवेक्षण अति सहायक है।
13. उचित प्रेरणा प्रदान करना- शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षकों को लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रेरित करता है। जिससे वे संस्था विकास हेतु अपनी क्षमताओं के समुचित प्रदर्शन में सफल हो सके।
14. कार्य के प्रतिसमर्पण भाव का विकास करना

9.5 पर्यवेक्षण के प्रकार

पर्यवेक्षण के प्रकारों को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है-

(A) भूमिका और दृष्टिकोण के आधार पर- भूमिका और दृष्टिकोण के आधार पर पर्यवेक्षण के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं-

1. निरीक्षणात्मक पर्यवेक्षण (Observational Supervision): यह पर्यवेक्षण का वह स्वरूप है जिसमें पर्यवेक्षण अधिकारी सर्वज्ञाता होता है, उसका उद्देश्य केवल त्रुटियों का पता लगाना होता है। इसे अधिकारिक पर्यवेक्षण भी कहते हैं। इसमें आज्ञा, निर्देशों एवं नियमों पर विशेष बल दिया जाता है। इस प्रकार के पर्यवेक्षण में पूर्व निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप उद्देश्यों की सफलता-असफलता का मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही यह भी माना जाता है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के निरीक्षण हेतु भिन्न-भिन्न मानदण्डों का निर्धारण आवश्यक है। एक ही मानदण्ड प्रत्येक परिस्थिति के निरीक्षण हेतु उपयुक्त नहीं हो सकता।

2. नियंत्रणात्मक पर्यवेक्षण (Controlled Supervision): यह पर्यवेक्षण निरीक्षणात्मक अथवा अधिकारिक पर्यवेक्षण के ही समान है। अन्तर केवल इतना होता है कि यह उचित क्रियाओं के लिए पुरस्कार एवं अनुचित क्रियाओं हेतु दण्ड आदि के प्रावधानों द्वारा आधिस्थों की क्रियाओं को नियंत्रित करता है। इसके लिए आवश्यक तकनीको का उपयोग किया जाता है, जिनके माध्यम से आधिस्थों की क्रियाओं का सही मूल्यांकन किया जा सके और कोई त्रुटि न होने पाये।

3. सहयोगी अथवा लोकतंत्रीय पर्यवेक्षण (Collaborative Or Democratic Supervision): इस प्रकार के पर्यवेक्षण में आधिस्थों की समस्याओं का निदान एवं संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति की जाँच जनतंत्रात्मक अथवा सहयोगी वातावरण में की जाती है। संगठन हितों की प्राप्ति में आने वाली समस्याओं के निदान हेतु

आधिनस्थों को आवश्यक सहायता एवं सहयोग प्रदान किया जाता है। पर्यवेक्षक प्रेरणा प्रदान करते हुए एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करता है ताकि आधिनस्थों की समस्याओं का समाधान भी किया जा सके और संगठन हितों की प्राप्ति हेतु उनकी क्रियाओं को भी आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान किया जा सके।

4. वैज्ञानिक पर्यवेक्षण (Scientific Supervision): इस प्रकार का पर्यवेक्षण क्रमबद्ध, वैध एवं विश्वसनीय होता है। यह आधुनिक तकनीकों एवं पूर्णतः वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित मापक यंत्रों के माध्यम से आधिनस्थ क्रियाओं का मूल्यांकन करता है। इसमें पूर्णतया वस्तुनिष्ठता विद्यमान रहती है।

5. रचनात्मक पर्यवेक्षण (Constructive Supervision): इस प्रकार के पर्यवेक्षण में आधिनस्थों के गुणों का पता लगाकर, उनके विकास एवं विस्तार हेतु समुचित पर्यावरण, सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है। इस तकनीक के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ गुण अवश्य ही विद्यमान होते हैं। आवश्यकता केवल उन गुणों की पहचान कर उन्हें निखारने की होती है। ऐसी स्थिति में एक पर्यवेक्षक अपनी पैनी दृष्टि के माध्यम से आधिनस्थों के उन गुणों की पहचान करता है और संगठन हित में उनके विकास हेतु उचित अवसर प्रदान करता अथवा प्रबन्धन के माध्यम से करवाता है।

(B) व्यक्तियों की संख्या के आधार पर- इस प्रकार के पर्यवेक्षण के निम्नलिखित दो प्रकार होते हैं-

1. पैनल पर्यवेक्षण (Panel Supervision): पैनल पर्यवेक्षण के अन्तर्गत व्यक्तियों के समूह अथवा पैनल द्वारा पर्यवेक्षण क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। प्रायः ऐसे पैनलों में तीन या उनसे अधिक व्यक्ति पर्यवेक्षण के लिए नियुक्त किये जाते हैं। सामान्यतया व्यक्तियों की संख्या तीन ही होती है। जिसमें एक विषय विशेषज्ञ, दूसरा तकनीक विशेषज्ञ और तीसरा विभागीय अधिकारी होता है। पैनल पर्यवेक्षण संगठन के प्रत्येक विभागों, इकाईयों एवं क्रियाओं की सूक्ष्मता से जाँच अथवा मूल्यांकन कर अपनी रिपोर्ट देता है। शिक्षा जगत में इस प्रकार के पर्यवेक्षण को ही अपनाया जाता है।

2. वैयक्तिक पर्यवेक्षण (Individual Supervision): इस प्रकार के पर्यवेक्षण में प्रबन्धन द्वारा एक व्यक्ति पर्यवेक्षण के लिए नियुक्त किया जाता है और वह ही समय-समय पर संगठन लक्ष्यों एवं कर्मचारी क्रियाओं का मूल्यांकन करता रहता है। इस पर्यवेक्षण में किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा मूल्यांकन कराने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

परम्परागत बनाम आधुनिक पर्यवेक्षण (Traditional Vs. Modern Supervision): प्रारंभ में पर्यवेक्षण को निरीक्षण (Inspection) के रूप में जाना जाता था जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों, शिक्षकों पुस्तकों व वित्त संबंधी सामान्य विद्यालयीन पक्षों का निरीक्षण किया जाता था। यह प्रक्रिया बहुत ही कठोर, नियंत्रित, एवं अव्यवस्थित होती थी जो शिक्षण संस्थानों में भय, आतंक तथा तानाशाही के वातावरण का प्रभाव छोड़ती थी। विद्यालय निरीक्षक केवल कमियाँ खोजने तथा दंडित करने का कार्य करते थे। यहाँ रचनात्मकता तथा सुधारात्मक आलोचना का अभाव था परंतु 20वीं सदी के प्रारंभ से ही इस अवधारणा में परिवर्तन की शुरुआत हुई तथा समय के साथ पर्यवेक्षण के आधुनिक रूप का गठन हुआ। परम्परागत व आधुनिक पर्यवेक्षण के मध्य अन्तर निम्नलिखित है-

परम्परागत एवं आधुनिक पर्यवेक्षण में अन्तर

परम्परागत पर्यवेक्षण (Traditional Supervision)	आधुनिक पर्यवेक्षण (Modern Supervision)
1. यह पर्यवेक्षण निरीक्षणात्मक होता है।	1. यह पर्यवेक्षण अध्ययन एवं विश्लेषण पर आधारित होता है।
2. इस पर्यवेक्षण में आकस्मिक निरीक्षण पर अधिक बल दिया जाता है।	2. इस पर्यवेक्षण में सुनिश्चित एवं औपचारिक योजनाओं पर बल दिया जाता है।
3. यह पर्यवेक्षण मुख्यतः आलोचना ही करता है, इसमें सुधारात्मक युक्तियों का कोई स्थान नहीं होता।	3. यह पर्यवेक्षण सुझावात्मक, सहयोगात्मक एवं प्रेरण प्रदान करने वाला होता है।
4. परम्परागत तकनीक अनियमित, आव्यवस्थित एवं योजना रहित होती है।	4. आधुनिक तकनीक निश्चित, व्यवस्थित एवं योजनाबद्ध होती है।
5. कर्मचारी समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।	5. इसमें संगठन हित को ध्यान में रखते हुए कर्मचारी समस्याओं का पता लगाकर उसका समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाता है।
6. अधिकारिक दृष्टिकोण पर आधारित होता है।	6. जनतंत्रात्मक दृष्टिकोण पर आधारित होता है।
7. प्राचीन एवं विकास शून्य कार्यक्रमों में विश्वास करने वाला दृष्टिकोण है।	7. नवीन आयामों, अनुसंधानों तथा प्रोत्साहनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है।
8. आत्मनिष्ठ एवं पक्षपाती होने की सम्भावना बनी रहती है।	8. विश्वसनीय निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ क्रिया है।
9. अधिकारियों पर विश्वास एवं आधिनस्थों पर अविश्वास रखने वाला दृष्टिकोण है।	9. प्रबन्धकों सहित कर्मचारियों पर भी विश्वास रखने वाला दृष्टिकोण है।
10. केवल कार्य-समाप्ति पर ध्यान, कर्मचारी रूचि, रचनात्मकता आदि के बारे में विचार नहीं करता।	10. संगठन उद्देश्यों की प्राप्ति के साथ-साथ कर्मचारी रूचि, सृजनात्मकता, रचनात्मकता एवं मौलिकता को प्रभावी बनाने पर भी जोर देता है।

9.6 पर्यवेक्षक के गुण

प्रभावी शैक्षिक पर्यवेक्षक के गुण (Attributes of an effective educational supervisor): अपनी भूमिकाओं के निर्वहन हेतु पर्यवेक्षक में कुछ महत्वपूर्ण कौशल अथवा गुण आवश्यक रूप से होने चाहिए। प्रो0 राबर्ट काहन के अनुसार पर्यवेक्षक के गुणों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है जो निम्नलिखित हैं-

1. मानवीय गुण (Human Attribute): लोगों के साथ कार्य करना और सहयोग स्थापित करना पर्यवेक्षक के समक्ष एक बड़ी चुनौती होती है। मानवीय गुण का सम्बन्ध अन्य लोगों के साथ कार्य करने एवं उनके माध्यम

से कार्य करवाने एवं समूह के सदस्य के रूप में प्रभावी व्यवहार करने से होता है। निम्नलिखित मानवीय सम्बन्धों के माध्यम से पर्यवेक्षक में उचित मानवीय गुणों का विकास किया जा सकता है-

1. प्रत्येक व्यक्ति का उसके गुणों के आधार पर मूल्यांकन करना।
2. आधिनस्थों के व्यवहारों से पहले प्रवरों के व्यवहारों का विश्लेषण करना।
3. कर्मचारियों का उत्तम प्राप्त करने हेतु समूह सदस्यों के साथ मधुर एवं सहयोगी सम्बन्ध स्थापित करना।
4. समूह सदस्यों को नीतियाँ निर्धारण में सहभागी बनाना।
5. समान लक्ष्य हेतु क्रिया करना एवं समूह क्रियाओं में सुधार लाना।
6. समस्या समाधान हेतु वस्तुनिष्ठ ढंग से सोचना।
7. आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करने के साथ-साथ स्पष्ट रूप से निर्देश देना।

2. तकनीकी गुण (Technical Attribute): किसी विशेष कार्य के प्रदर्शन हेतु आवश्यक समझ एवं दक्षता का होना तकनीकी गुण से सम्बन्धित होता है। इस गुण से सम्बन्धित कुछ दिशानिर्देश निम्नलिखित हैं-

1. पर्यवेक्षित की जाने वाली विषय-वस्तु से जुड़ी आवश्यक दक्षता का ज्ञान होना।
2. कर्मचारियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उन्हें स्पष्ट रूप से कार्यभार प्रदान करना।
3. व्यवस्था का ज्ञान, क्रियाविधियाँ, सामग्रियों, उपकरणों की विशेष जानकारी का होना।
4. लक्ष्यों की उचित दिशा में प्राप्ति हेतु आवश्यक सहयोग एवं सहभागी वातावरण निर्मित करना।

3. सम्प्रत्ययात्मक गुण (Conceptual Attribute): संगठन को एक सम्पूर्ण के रूप में देखना और सम्बन्धों को इसका एक भाग मानना सम्प्रत्ययात्मक गुण से सम्बन्धित होता है। इन गुणों के विकास हेतु आवश्यक दिशा निर्देश निम्नलिखित हैं-

1. सम्पूर्ण दशा को उसके वृहद आयामों के रूप में देखना।
2. संस्थान की विभिन्न क्रियाओं के सन्दर्भ में दूरदर्शिता अपनाना एवं एक भाग में होने वाला परिवर्तन किस प्रकार दूसरे भाग एवं सम्पूर्ण संस्थान को प्रभावित करता है उसकी भविष्यवाणी करना।
3. सम्पूर्ण परिदृश्य को देखने की योग्यता, वृहद दृष्टिकोण एवं मित्रतापूर्ण अभिवृत्ति पर्यवेक्षण को प्रभावी बनाती है।
4. प्रत्येक विभाग की विभिन्न छोटी से छोटी क्रिया का अवधारणात्मक ज्ञान सम्पूर्ण संगठन की क्रियाओं को निर्धारित करने में योगदान देता है।

उपरोक्त तीन मुख्य गुणों के अतिरिक्त एक प्रभावी पर्यवेक्षक हेतु कुछ अन्य गुणों का होना भी आवश्यक माना जाता है, जो अग्रलिखित हैं-

1. नेतृत्व प्रदान करना।
2. सम्बन्धित व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि के माध्यम से विभागीय क्रियाओं एवं संस्थान लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग देना।
3. शिक्षण-अधिगम व्यवस्था का पूर्ण अध्ययन कर शिक्षण अधिगम व्यवस्था में आवश्यक सुधार लाना।

4. शैक्षिक उत्पादनों में वृद्धि करना।

5. प्रत्येक कर्मचारी एवं विभाग को उसकी क्रियाओं हेतु पृष्ठपोषण प्रदान करना।

अतः उपरोक्त गुणों के माध्यम से एक पर्यवेक्षक की क्रियाओं को दक्ष एवं प्रभावी बनाया जाता है। पर्यवेक्षण जो मुख्य रूप से संस्थान लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं का मूल्यांकन होता है और शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षा क्षेत्र एवं शैक्षिक संस्थानों के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षकों, विद्यार्थियों की क्रियाओं एवं सम्पूर्ण विद्यालयी क्रियाओं का मूल्यांकन होता है, जिसे प्रभावी बनाने की दिशा में शैक्षिक पर्यवेक्षक के गुणों का प्रभावी होना भी आवश्यक होता है।

9.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पर्यवेक्षण क्या है? इसके अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
2. पर्यवेक्षण के कौन-कौन से कार्य हैं?
3. पर्यवेक्षण कितने प्रकार का होता है?
4. एक कुशल पर्यवेक्षक में कौन-कौन से गुण आवश्यक हैं? इन गुणों की सूची बनाइए।

9.8 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तके

1. Terry, G.R. (1954). Principles of Management, Illinois, Richard, D. Trwin. Inc., Homewood.
2. Koontz, Harold & O' Donnel, Cyril. Essentials of Management, New York, Tata Mc. Graw Hill.
3. Rao, V.S.P. & Krishna, V. Hari (2002) Management : Text and cases, New Delhi, Excel Books.
4. Hughes, Richard L., Gennett, R.C. & Curphy, Gordon J. Leadership, Enhancing the lessons of Experience (Sixth edition) New York, Tata Mc Graw Hill.
5. Bhatnagar, R.P. (2010). Educational Administration. Meruth, International Publishing House.
6. Verma, J.P. (2008). Educational Management (4th edition). Jaipur Rajasthan Hindi Granth Academy.

इकाई 10 : शैक्षिक नियोजन , व्यवस्था तथा पर्यवेक्षण कार्यक्रम संरचना

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 शैक्षिक नियोजन का अर्थ
- 10.4 शैक्षिक नियोजन का महत्व
- 10.5 शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य
- 10.6 नियोजन के महत्वपूर्ण घटक
 - 10.6.1 संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य की भूमिका
 - 10.6.2 संस्थागत योजना में अध्यापक की भूमिका -
 - 10.6.3 संस्थागत योजना में छात्रों का योगदान
 - 10.6.4 संस्थागत योजना बनाने के आधारभूत सिद्धान्त
- 10.7 शैक्षिक नियोजन के प्रकार
 - 10.7.1 भारतीय शिक्षा-नियोजन की विशेषताएँ
- 10.8 शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया
- 10.9 शिक्षा व्यवस्था
- 10.10 शिक्षा पर्यवेक्षण
- 10.11 सारांश
- 10.12 शब्दावली
- 10.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 10.15 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
- 10.16 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

संस्थागत योजना एक विस्तृत बहुमुखी कार्य-योजना है जो संस्था की कर्मियों और खराबियों पर प्रहार करती है। यह एक ऐसा कार्यक्रम प्रस्तुत करती है जो वांछित शैक्षिक उपलब्धियों को प्राप्त करने के उपायों को ढूँढने में सहायता देती हैं। इस कार्यक्रम में संस्था के वे समस्त क्रियाकलाप शामिल हैं, जिनसे संस्था का सर्वांगीण विकास होता है। इस प्रकार की योजना को तैयार करने में प्रधानाध्यापक अपने सभी सहयोगियों की मदद लेता है, जिससे योजना का विस्तृत स्वरूप बन सके।

संस्थागत योजना का आधार है योजना किसी एक की नहीं, सभी की है, 'मानवी साधन भौतिक साधनों से बड़ा है', जो है उसका पूरा इस्तेमाल किया जाए', उन्नति की गुंजाइश हमेशा रहती है। 'किंचितमात्र ही सही, कल को आज से आगे बढ़ना है'।

प्रो० एम०बी० बुच ने संस्थागत नियोजन को इस प्रकार परिभाषित किया है- "संस्थागत योजना उन कार्यक्रमों का समुच्चय है जिनको संस्था द्वारा अपनी अनुभूत आवश्यकताओं तथा निज के उपलब्ध एवं भविष्य में उपलब्ध संसाधनों के आधार पर तैयार किया जाता है। संस्था इन कार्यक्रमों का निर्धारण विद्यालय के स्तरों तथा व्यवहारों को उन्नत बनाने तथा संस्था के भावी विकास के सन्दर्भ में करती है।"

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं-

1. संस्थान योजना शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों को पूरा करने का एक साधन है।
2. संस्थान योजना के निर्माण के लिए माननीय तथा भौतिक संसाधनों का ज्ञान आवश्यक है।
3. उपलब्ध संसाधनों का, जो संस्था व समुदाय में उपलब्ध है, अधिकतम सीमा तक प्रयोग हो।
4. यह योजना दीर्घकालीन भी हो सकती है और अल्पकालीन भी।

शिक्षा में प्रगति तभी सम्भव है जब उपलब्ध साधनों, सामग्री तथा सुविधाओं के आधार पर शैक्षिक योजनाओं का निर्माण किया जाये तथा उन योजनाओं को कार्यरूप में परिणत कराने के लिए कुशल प्रशासन की व्यवस्था हो। शिक्षा-प्रशासन और शैक्षिक नियोजन के तालमेल से ही शैक्षिक प्रगति सम्भव है। दोनों के सन्तुलित समन्वय से कार्य-कुशलता तथा क्षमता में वृद्धि होती है। अतः इस दृष्टि से शैक्षिक नियोजन के विषय में अध्ययन करना आवश्यक है।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त

1. आप शैक्षिक नियोजन का अर्थ बता सकेंगे।
2. नियोजन के अर्थ को विभिन्न परिभाषाओं की सहायता से व्यक्त कर सकेंगे।
3. शैक्षिक नियोजन का महत्व विस्तार से समझा सकेंगे।
4. शिक्षा के अर्थ को विभिन्न परिभाषाओं की सहायता से व्यक्त कर सकेंगे।
5. शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य जान सकेंगे।
6. संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य, अध्यापक, तथा छात्रों महत्वपूर्ण भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।
7. शैक्षिक नियोजन के प्रकार की व्याख्या कर सकेंगे।
8. शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया से अवगत हो सकेंगे।

9. नियोजन का शिक्षा के साथ निहित सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकेंगे।

10. शिक्षा व्यवस्था और शिक्षा पर्यवेक्षण का अर्थ समझ सकेंगे।

10.3 शैक्षिक नियोजन का अर्थ

किसी भी देश के लिए यह परम आवश्यक है कि वह आगे आने वाली पीढ़ी की शिक्षा की उचित व्यवस्था करे तथा शैक्षिक योजना इस प्रकार तैयार करे कि उससे प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों ही प्रकार का विकास सम्भव हो सके। शैक्षिक नियोजन द्वारा ही शिक्षा को विकास की ओर ले जाया जाता है। अतः इस दृष्टि से शैक्षिक नियोजन का अर्थ जानना आवश्यक है। शैक्षिक नियोजन का अर्थ है- किसी सत्ता द्वारा प्रमुख शैक्षिक निर्णय करने की ऐसी क्रिया जिनमें समस्त शैक्षिक एवं आर्थिक व्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर यह निर्णय लिया जाता है कि शिक्षा प्रत्येक स्तर पर कैसे, कौन-सी, कितनी तथा किस रूप में दी जाये एवं उसका प्रचार किन लोगों के बीच में किया जाये? शैक्षिक नियोजन राज्य की एक सुसंगठित एवं सुसम्बन्धित (कोऑर्डिनेटेड) प्रक्रिया है जो कुछ निश्चित उद्देश्यों को विशिष्ट समय में पूरा करने के लक्ष्य से स्थानीय स्वायत्त शास्त्र अथवा राज्य सरकार या केन्द्रीय शासन द्वारा नियन्त्रित होती है। शैक्षिक नियोजन का अर्थ शैक्षिक कार्य को ऐसी व्यवस्था देने से है जिसमें उपलब्ध साधनों एवं सामान का विशेष महत्व रहता है। साधन एवं सामग्री की दृष्टि से जब आर्थिक योजना में शिक्षा विकास का कार्यक्रम भी समन्वित कर लिया जाता है तो इसे शिक्षा का समग्र नियोजन (ओवर-ऑल प्लानिंग) कहा जाता है। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा का इसी प्रकार का नियोजन कर उसे सम्पूर्ण विकास योजना का एक महत्वपूर्ण अंग बना लिया गया है। स्पष्ट है कि शैक्षिक नियोजन का अर्थ शैक्षिक विकास हेतु उपलब्ध साधनों एवं सामग्री का अधिकतम उपयोग इस प्रकार से करना है कि एक निर्धारित समय में शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। शिक्षा नियोजन देश में आर्थिक साधनों के द्वारा देश को शैक्षणिक सुविधाओं तथा अवसरों को प्रदान करने तथा इस दिशा में आर्थिक साधनों का अधिकतम उपयोग करने का माध्यम है।

10.4 शैक्षिक नियोजन का महत्व

शिक्षा के विकास की दृष्टि से शैक्षिक नियोजन का विशेष महत्व है वेबस्टर शब्दकोश के अनुसार-नियोजन वह कार्य या प्रक्रिया है जो योजनाओं का क्रियान्वयन करता है (Planning in an act or process of making or arranging our plans.) योजना पूर्व निश्चित कौशलों का निर्धारण है। उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह गहन कार्यक्रमों का संयोजन है।

हैंगमैन तथा स्काटर्ज के शब्दों में - “नियोजन विकल्पों में से चयन करता है। यात्रा करने से पूर्व रास्ते का चयन करता है, कार्य के सम्भावित या होने वाले परिणामों की कल्पना करता है और इसका संगठन किसी भी व्यक्ति के प्रति वांछित होता है”।

(Planning selects among alternatives. explores routes before travel begins and identifies possible or probable outcomes of action before the executive and his organization.) - Hartan H.L Hagman and Alfred Schwartz

शिक्षा एक ऐसा तत्व है जिसके द्वारा राष्ट्र का विकास होता है। सभी प्रगतिशील राष्ट्रों का विकास का आधार वहाँ की शिक्षा-प्रणाली ही रही है। इस दृष्टि से शैक्षिक नियोजन का महत्व किसी से छिपा नहीं है। शैक्षिक नियोजन का महत्व निम्न बातों के आधार पर विचार करने से अधिक स्पष्ट होता है-

1. शिक्षा के विकास में मानवीय साधनों अथवा कर्मचारियों का उपयुक्त प्रयोग कर सकना जिससे शिक्षा विकास की ओर उन्मुख हो सके।
2. उपलब्ध आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक साधनों तथा सामग्री का शिक्षा-विकास हेतु प्रयोग कर सकना जिससे उनका अपव्यय न हो।
3. शिक्षा के प्रत्येक स्तर में विकास की दृष्टि से सन्तुलन बनाये रखना जिससे सभी स्तरों पर शिक्षा अवसरों की समानता के आधार पर दी जा सके।
4. शिक्षा-विकास हेतु मानव की सृजनात्मक शक्ति, आलोचनात्मक, गुणग्राहित और सांस्कृतिक तथा अभिरुचियों का प्रयोग करके कला, साहित्य, विज्ञान एवं संस्कृति का विकास करना जिससे व्यक्ति और समाज दोनों ही एक साथ विकास के मार्ग पर आगे बढ़ सके।
5. शिक्षा में संख्यात्मक विकास के साथ ही गुणात्मक विकास करना जिससे सही व्यक्ति को सही शिक्षा मिल सके।
6. राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों के विकास के लिए शैक्षिक नियोजन पर गम्भीर रूप से विचार करना जिससे अधिकतम लोगों का अधिकतम विकास किया जा सके।
7. समाज की आकांक्षाओं, परम्पराओं और आदर्शों को संरक्षण मिलना जिससे भारतीय विकास की कल्पना को साकार रूप दिया जा सके।
8. आर्थिक, व्यवसायिक, तकनीकी, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आदि क्षेत्रों में योग्य नेतृत्व प्रदान कर सकना, जिससे उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में विकास किया जा सके।
9. शिक्षा-प्रणाली में सुधार लाना जिससे समूची शिक्षा-प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक रूप दिया जा सके।
10. देश में व्याप्त समूची शिक्षा-प्रणाली को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करना जिससे उसमें क्रमबद्धता, व्यवस्था तथा तारतम्यता लायी जा सके।

आइये अब शैक्षिक नियोजन का महत्व जानने के उपरान्त हम जाने कि शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य क्या हैं।

10.5 शैक्षिक नियोजन के उद्देश्य

शिक्षा नियोजन के अनेक रूपों में देखा जाता है, जैसे- सामान्य रूप में साधन जुटाना, भविष्य की आवश्यकताओं का आकलन, शिक्षण के कार्यों को प्रोत्साहन तथा नई पीढ़ी के निर्माण हेतु उद्देश्यों का निर्धारण करना, बढ़ती जनसंख्या, जन-शक्ति का उपयोग परिस्थितियाँ, बाधाएँ, वैज्ञानिक साधनों का उपयोग आदि का निर्धारण ही शैक्षिक योजना हैं। प्रशासनिक दृष्टि से शैक्षिक नियोजन के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं

1. शिक्षा का विकास करने हेतु एक निश्चित दिशा निर्धारित करना तथा साधनों का जुटाना।
2. देश की राजनीतिक एवं सामाजिक प्रगति हेतु आवश्यकतानुसार शिक्षा का स्वरूप निर्धारित करना
3. देश की आर्थिक प्रगति होने तथा आत्मनिर्भर बनने की दृष्टि से शिक्षा का योगदान निश्चित करना।
4. देश की सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक प्रगति में शिक्षा की भूमिका तैयार करना तथा उस भूमिका को निभाने हेतु दिशा निर्धारित करना।
5. शिक्षा-प्रशासन में उपयोगी एवं आवश्यक परिवर्तन लाकर निर्धारित शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रयास करना।
6. शैक्षिक क्रियाओं, गतिविधियाँ, योजनाओं तथा प्रयासों को अधिक प्रभावी और गतिशील बनाना।

10.6 नियोजन के महत्वपूर्ण घटक-

नियोजन के अर्थ को विस्तारपूर्वक जानने के लिए अंग्रेजी भाषा में चंसंदपदह के एक-एक अक्षर से जुड़े अर्थ को नीचे दिया जा रहा है -

- P — Stands for Purpose (उद्देश्य)
Stands for Policies (नीतियाँ)
Stands for Private and Public Participation (निजी तथा सरकार की भागीदारी)
Stands for Perspective (दृश्यधार योजना)
- L - Stands for Long and Short Term Plan (दीर्घकालीन तथा लघुकालीन)
Legislation (कानून अथवा नियम) बनाना
Liaism (समन्वय) स्थापित करना।
- A- Stands for Administrative Structure (प्रबन्धात्मक ढाँचा)
Stands for Advisory Bodies (सलाहकार संस्थाएँ)

Stands for Appraisal (समीक्षां)

N- Stands for National Development (राष्ट्रीय विकास/शैक्षिक विकासं)

Stands for National Income (राष्ट्रीय आय)

Stands for Needs (आवश्यकताएं)

Stands for Data (आँकड़े)

I- Stands for Investment (निवेश)

Stands for Indigenous resources (स्थानीय संसाधन)

N- Stands for New Priorities (नई मांगे)

Stands for Nomenclature of Structure (ढाँचे की आकृति)

G- Stands for Gross Domestic Product (समग्र घरेलू उत्पादन)

Stands for National Product (समग्र राष्ट्रीय उत्पादन)

Stands for GNP per capita income (प्रति व्यक्ति समग्र आय)

संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्रों तथा समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आइये जाने -

10.6.1 संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य की भूमिका -

प्रधानाचार्य अपने स्कूल की कमजोरियों तथा अच्छाइयों का पूरा जायजा ले। अध्यापकों को विद्यालय-सुधार के लिए प्रेरित करे और स्कूल-सुधार की सुनियोजित योजना तैयार करे। उसके लिए आवश्यक है कि वह निम्नलिखित बातों पर विशेष बल दे-

1. सबसे पूर्व वह अपने सहयोगी अध्यापकों के साथ व्यक्तिगत परामर्श करे और फिर सामूहिक रूप से परामर्श करे। अध्यापक सभा में उस संस्थागत योजना की आवश्यकता लाभ तथा कार्य-प्रणाली पर प्रकाश डाले। अध्यापकों द्वारा बताये गये सुझावों को ध्यान में रखे और उन पर उचित विचार करे।
2. स्कूल की आवश्यकताओं का सर्वेक्षण किया जाये। देखा जाये कि विद्यालय में किन-किन क्षेत्रों में सुधार होना चाहिए। अध्यापकों को इस प्रकार के सर्वेक्षण का कार्य बाँट दिया जाए ताकि वे भी अपने आपको उतना ही उत्तरदायी समझें।
3. स्कूल तथा स्थानीय साधनों का सर्वेक्षण किया जाये। विशेषकर यह देखा जाये कि स्कूल में कौन-कौन से साधन विद्यमान है।

4. स्कूल-सुधार कार्यक्रम को दो भागों में बांटा जाये, थोड़े समय के लिए तथा दीर्घकाल के लिए।
5. प्रत्येक अध्यापक को निश्चित कार्य दिया जाये।
6. स्कूल सुधार कार्यक्रम के पूरा होने पर उसका उचित मूल्यांकन किया जाये।
7. प्रधानाचार्य प्रत्येक अध्यापक से एक जैसे फल की आशा न रखे। वह भली-भांति समझ लें कि प्रत्येक अध्यापक की कार्य करने की क्षमता भिन्न होती है।
8. प्रधानाचार्य किसी अन्य स्कूल द्वारा बनाई गई स्कूल-सुधार योजना का अन्धाधुन्ध अनुकरण न करे। वह भली-भांति समझ लें कि प्रत्येक स्कूल की अपनी स्थिति होती है।
9. प्रधानाचार्य समस्त स्कूल समुदाय को इस कार्य में सम्मिलित करने का प्रयास करें।
10. स्कूल सत्र के आरम्भ होने से पूर्व स्कूल-योजना तैयार कर ली जाए।
11. स्कूल-योजना बनाते समय प्रधानाचार्य विभागीय अधिकारियों से विचार-विमर्श करें ताकि योजना विभागीय योजना का अंग बन सके।

10.6.2 संस्थागत योजना में अध्यापक की भूमिका -

संस्थागत योजना बनाने तथा कार्यरूप देने में अध्यापकों का विशेष स्थान है। अध्यापक ही इन ढाँचे के आधार-सतम्भ हैं। उन्हें ही छात्रों तथा उनके अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करना है और स्कूल-सुधार आन्दोलन में उन्हें प्रेरित करके उनकी समस्त शक्तियों का अधिकतम लाभ उठाना है। उन्हें स्कूल के समस्याओं पर व्यक्तिगत तथा सामुहिक रूप से चिन्तन करना है। वे स्कूल की तथा अपनी खामियों से भली-भांति परिचित हैं। वे जानते हैं कि छात्रों की कमजोरियाँ कौन सी हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है। अध्यापकों को इस कार्य में उत्साह दिखाना चाहिए और मिलजुल कर कार्य करना चाहिए तथा अपना दृष्टिकोण विशाल रखना चाहिए।

10.6.3 संस्थागत योजना में छात्रों का योगदान -

संस्थागत योजना के अन्तर्गत कई ऐसे कार्य भी हैं जिनमें छात्रों का सहयोग अत्यन्त वांछनीय है। वास्तव में यदि देखा जाए तो प्रत्येक कार्य में छात्र हाथ बाँटा सकते हैं। अतः यह आवश्यक है कि छात्रों को स्कूल-सुधार आन्दोलन में प्रेरित किया जाए।

बोध प्रश्न - 1

- 1 स्कूल सुधार कार्यक्रम के पूरा होने पर उसका उचित किया जाये।
- 2 संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्रों तथा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

10.6.4 संस्थागत योजना बनाने के आधारभूत सिद्धान्त

1. प्रत्येक स्कूल को अपनी जरूरत, अपने रहन-सहन, अपने तौर-तरीके के अनुसार ही अपनी योजना बनानी चाहिए और उसे कार्यान्वित करना चाहिए।
2. प्रत्येक अध्यापक में यह क्षमता है कि वह किसी भी परिस्थिति में हो, अपनी बुद्धि और कुशलता से साधनों का सृजन कर सकता है और अपनी परिस्थिति में किंचित सुधार कर सकता है।
3. प्रत्येक कार्यकर्ता के मष्तिष्क में किसी भी कार्य को करने की एक योजना बनती है। जितना ही वह कार्यकर्ता प्रतिभावन होता है, उतनी ही वह योजना स्पष्ट होती है। जितनी ही योजना स्पष्ट होती है, उतना ही प्रबल उसका प्रबन्धन उस कार्यकर्ता पर होता है।
4. योजना का आधार स्थानीय सामग्री हो।

10.7 शैक्षिक नियोजन के प्रकार

शिक्षा-नियोजन विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। दूसरे कोई भी नियोजन हो वह एक विशिष्ट लक्ष्य को लेकर तैयार किया जाता है। शैक्षिक परिस्थितियों, लक्ष्यों एवं विभिन्न कार्यक्रमों के आधार पर शैक्षिक नियोजन भी कई प्रकार के होते हैं। नीचे शैक्षिक नियोजन के कुछ प्रमुख प्रकारों का आप अध्ययन करेंगे-

1. स्वतन्त्र नियोजन - प्रजातान्त्रिक ढंग से शैक्षिक योजना को स्वतन्त्र रूप से तैयार करना और फिर आवश्यकतानुसार परिस्थितियों के अनुकूल उसमें सुधार करना स्वतन्त्र नियोजन कहलाता है। इसके अनुसार योजना की विस्तृत भूमिका तैयार करके उसे जन-समूह, विशेषज्ञों तथा सम्बन्धित व्यक्तियों के सम्मुख विज्ञापन के विभिन्न स्रोतों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। जिससे उनके विचारों के आधार पर उसमें सुधार करके योजना को निश्चित रूप दिया जा सके और कार्यान्वित किया जा सके।

2. उद्देश्ययुक्त नियोजन- कोई भी योजना उद्देश्य विहीन नहीं होती किन्तु कुछ योजनाएँ ऐसी होती हैं जो किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करने हेतु ही बनायी जाती हैं और लक्ष्य की पूर्ति होते ही उद्देश्यों में परिवर्तन होने पर योजना में भी परिवर्तन होता जाता है। ऐसी योजनाएँ उद्देश्यों में परिवर्तन होने पर योजना में भी परिवर्तन हो जाता है। ऐसी योजनाएँ उद्देश्य केन्द्रित कहलती हैं। इन योजनाओं का स्वरूप उद्देश्यों के आधार पर निर्धारित होता है, किन्तु उद्देश्यो में परिवर्तन होता रहता है। अतः ऐसी योजनाएँ परिवर्तनशील होती हैं। यदि उद्देश्य निश्चित होते हैं तो योजनाओं में भी निश्चितता रहती है। शिक्षा के उद्देश्य आवश्यकताओं, साधनों, सामर्थ्य तथा सुविधाओं के आधार पर निर्धारित होते हैं। अतः उद्देश्ययुक्त योजनाओं का आधार भी आवश्यकताएँ, उपलब्ध साधन एवं सुविधाएँ आदि ही हैं।

3. दीर्घकालीन नियोजन - जब अवधि के आधार पर योजना तैयार की जाती हैं तो समय के अनुसार नियोजन को रूप दिया जाता है। प्रायः पाँच वर्ष से अधिक या दस, पन्द्रह अथवा तीस वर्षों के लिए तैयार की गयी योजना को दीर्घकालीन नियोजन कहते हैं। दीर्घकालीन नियोजन का लक्ष्य अत्यन्त ही गहरा होता है और उस

लक्ष्य तक पहुंचने में लगने वाला समय भी काफी लम्बा रहता है। दीर्घकालीन नियोजन में अधिक दक्षता, दूरदर्शिता और चतुराई की आवश्यकता होती है। इसकी कार्यान्वित एक लम्बे समय तक चला करती है। शिक्षा की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करने एवं शिक्षा का विकास करने हेतु दीर्घकालीन शैक्षिक नियोजन का निर्माण किया जाता है।

4. अल्पकालीन नियोजन - जब छोटी-सी अवधि के लिए योजना तैयार की जाती है तो उसे अल्पकालीन नियोजन कहते हैं। प्रायः एक से पाँच वर्ष के लिए निर्मित योजना को अल्पकालीन नियोजन कहते हैं। अल्पकालीन नियोजन में छोटी-छोटी शीघ्र पूर्ण होने वाली योजनाएँ रहती हैं। ऐसी योजनाओं का लक्ष्य कम समय में पूरा हो जाता है। विद्यालय की प्रगति हेतु अल्पकालीन नियोजन का निर्माण कराना आवश्यक है। जिसमें उसकी प्रगति प्रत्येक क्षेत्र में कम समय में हो सके।

5. गतिशील नियोजन - गतिशील नियोजन में परिस्थितियों, आवश्यकताओं तथा साधनों के अनुसार गति लाने की दृष्टि से परिवर्तन कर सकने वाली योजनाएँ सम्मिलित रहती हैं। इस प्रकार के नियोजन लचीले होते हैं और विकास एवं प्रगति की दृष्टि से अधिक उपयोगी होते हैं। शिक्षा के अनेक पहलू गतिशील नियोजन के आधार पर ही विकसित होते हैं। शिक्षा के छोटे स्तर से लेकर बड़े स्तर तक इस प्रकार के नियोजन निर्मित करके लाभ उठाया जा सकता है।

6. स्थिर नियोजन - शिक्षा की ऐसी योजनाएँ जिनका निर्माण करने के बाद परिवर्तन करना दुरूह हो, स्थिर नियोजन के अन्तर्गत आती हैं। ऐसी योजनाएँ स्वभाव से कठोर और शीघ्र लाभ देने वाली नहीं होती हैं। गतिशील नियोजन की तुलना में स्थिर नियोजन अधिक उपयोगी तथा लाभप्रद सिद्ध नहीं होते हैं।

7. शिक्षा की सभी शाखाओं के विकास हेतु नियोजन - जब शिक्षा की विभिन्न शाखाओं का एक साथ विकास करने की दृष्टि से योजना निर्मित होती है तो उसे शिक्षा की सभी शाखाओं का विकास हेतु नियोजन कहते हैं। इसके अन्तर्गत पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय, टेक्नीकल शिक्षा और महिलाओं, अपंगों एवं समाज शिक्षा से सम्बन्धित पहले अलग-अलग योजनाएँ बनायी जाती हैं और तदुपरान्त सबको विकास की दृष्टि से एक साथ जोड़कर एक समन्वित विस्तृत योजना तैयार की जाती है। इस प्रकार की योजना से सबसे बड़ा लाभ यह है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शैक्षिक प्रगति की स्थिति तथा विकास की गति सरलता से ज्ञात हो जाती है।

8. आवश्यकता पर आधारित नियोजन- प्रत्येक देश की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः शिक्षा-योजना भी प्रत्येक देश की अलग-अलग होती है। अनेक पिछड़े देश की शिक्षा-योजना को आधार बनाकर उसमें स्वयं की आवश्यकताओं, साधनों, सामग्री तथा सुविधाओं के अनुसार परिवर्तन करके प्रगति हेतु योजनाएँ बनती हैं। ऐसी योजनाओं का प्रमुख आधार आवश्यकताएँ ही होती हैं जिससे उन्हें आवश्यकताओं पर आधारित नियोजन कहा जाता है।

9. साधन पर आधारित नियोजन - ऐसी योजनाएँ जो वित्तीय व्यवस्था, मानवीय साधनों एवं उपलब्ध सुविधाओं को आँकने के पश्चात् तैयार की जाती हैं, उन्हें साधन आधारित नियोजन कहते हैं। ऐसी योजनाओं को उपलब्ध साधनों के आधार पर प्राथमिकता देकर कार्यान्वित किया जाता है। इस प्रकार की योजनाओं में धन की पर्याप्त व्यवस्था करना आवश्यक है।

10. क्षेत्रीय नियोजन - जब क्षेत्रीय आधार पर शिक्षा नियोजन किया जाता है तो उसे क्षेत्रीय नियोजन कहते हैं। क्षेत्रीय नियोजन स्थानीय स्तर पर जिले स्तर पर, सम्भागीय स्तर पर, राज्य स्तर पर तथा केन्द्रीय स्तर पर निर्मित किये जाते हैं। क्षेत्रीय योजनाओं का निर्माण क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं, परिस्थितियों तथा साधनों के आधार पर किया जाता है। भारत एक ऐसा विशाल देश है जहाँ विभिन्न क्षेत्र की भाषाओं, आवश्यकताओं, नियमों एवं परिपाटियों, साधनों तथा उपकरणों में विभिन्नता पायी जाती है। अतः इस दृष्टि से शैक्षिक विकास हेतु क्षेत्रीय नियोजन करना उपयोगी सिद्ध होगा। भारत में क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय (रीजनल कॉलेज ऑफ एजुकेशन) तथा यान्त्रिक शिक्षा (टैक्नीकल एजुकेशन) की चार-चार संस्थाएँ क्षेत्रीय नियोजन के आधार पर कार्य कर रही हैं।

11. प्रशासकीय नियोजन - शिक्षा-प्रशासन का सम्बन्ध निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण से अधिक रहता है। अतः प्रशासनिक दृष्टि से निरीक्षण करने, पर्यवेक्षण करने तथा नियंत्रण रखने सम्बन्धी जो भी योजना तैयार की जाती है उसे प्रशासकीय नियोजन के अन्तर्गत ही माना जाता है। प्रशासनिक नियोजन के अन्तर्गत व्यवस्था सम्बन्धी शैक्षिक समस्याओं का निवारण करने सम्बन्धी तथा शैक्षिक विकास करने सम्बन्धी बात पर भी योजनाएँ तैयार की जाती हैं।

12. वित्त नियोजन - शैक्षिक नियोजनाओं में वित्त नियोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वगैर वित्त के कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती है। शिक्षा की कोई भी योजना हो जब तक उस योजना को वित्तीय योजना के आधार पर तैयार न किया गया हो तो सारा श्रम व्यर्थ चला जायेगा और यथार्थ में उसे क्रियान्वित भी नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के कार्यक्रमों, क्रियाओं, योजनाओं, शैक्षिक प्रयासों के लिए कितना धन चाहिए? शैक्षिक आय के कौन-कौन से साधन व स्रोत हैं? शैक्षिक व्यय की कौन सी मदें हैं? आदि प्रश्नों पर जब तक वित्त नियोजन के अन्तर्गत विचार न किया जायेगा तब तक किसी भी शिक्षा नियोजन की कल्पना करना व्यर्थ है।

13. सांख्यिकीय नियोजन - शिक्षा के गुणात्मक विकास करने के साथ ही संख्यात्मक विकास पर भी विचार करना आवश्यक है। इसके अन्तर्गत छात्रों, शिक्षकों, विद्यालयों, शिक्षा-प्रशासकों, निरीक्षकों, पर्यवेक्षकों तथा कर्मचारियों की संख्या आदि पर विचार करके योजनाएँ तैयार की जाती हैं। संख्यात्मक विकास के अन्तर्गत विद्यालय-भवन, प्रयोगशालाएँ, ग्रन्थालय, फर्नीचर, उपकरण एवं अन्य साधन भी आ जाते हैं जिनकी व्यवस्था हेतु योजनाएँ तैयार की जाती हैं। देश की जनसंख्या के अनुपात में ही सम्पूर्ण शैक्षिक योजना तैयार की जाती है जिससे सभी को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर उपलब्ध हो सकें। शिक्षा में संख्यात्मक विकास की आवश्यकता के कारण ही गुणात्मक, प्रशासकीय एवं वित्त नियोजन के स्वरूप निर्धारित किये गये हैं। शिक्षा-

नियोजन का कोई भी स्वरूप क्यों न हो, जब तक उनमें पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करके सम्पूर्ण योजना तैयार नहीं की जाती हो तब तक निर्धारित लक्ष्यों की उपलब्धि नहीं की जा सकती है।

नियोजन के प्रकार जानने के बाद आइए अब हम भारतीय शिक्षा नियोजन की विशेषताओं का अध्ययन करें।

10.7.1 भारतीय शिक्षा-नियोजन की विशेषताएँ

प्रत्येक देश की अपनी शैक्षिक नियोजन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं। भारतीय शिक्षा-नियोजन की भी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर भारत में शैक्षिक प्रगति होने की सम्भावना बनी हुई है। भारतीय शिक्षा-नियोजन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. आर्थिक नियोजन के रूप में शिक्षा नियोजन - भारत में शिक्षा नियोजन, आर्थिक नियोजन के एक अंग के रूप में कार्य करता है। शैक्षिक नियोजन भारत की अर्थव्यवस्था पर अधिक आश्रित है। धनाभाव के कारण भारत में श्रेष्ठ शैक्षिक योजनाएँ भी फलीभूत नहीं हो पा रही हैं।
2. व्यक्ति व समाज दोनों का अधिकतम विकास होना - शैक्षिक नियोजन का स्वरूप भारत में इस प्रकार से निर्धारित करने का प्रयास किया जाता है कि उससे व्यक्ति और समाज दोनों का सन्तुलित विकास हो सके। देश में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का एकीकरण व्यक्ति एवं समाज दोनों के अधिकतम विकास को ध्यान में रखकर किया जाता है। शैक्षिक क्रियाओं एवं योजनाओं का भी लक्ष्य व्यक्ति एवं समाज दोनों का सन्तुलित विकास करना है।
3. देश में सांस्कृतिक प्रगति लाना - भारतीय शिक्षा नियोजन के अन्तर्गत देश की सांस्कृतिक प्रगति होने का लक्ष्य छिपा हुआ है। शैक्षिक नियोजन भारतीय संस्कृति को संरक्षण प्रदान करता है और आवश्यकता पड़ने पर उसका पुनर्निर्माण भी करता है।
4. सामाजिक परिवर्तन लाना - भारत में अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता तथा अज्ञानता छापी हुई है जिसे शैक्षिक नियोजन द्वारा दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। ताकि नवीन चेतना जाग्रत हो सके और समाज विकास की ओर उन्मुख हो सके।
5. देश में आर्थिक प्रगति लाना - भारतीय शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत भविष्य में आर्थिक प्रगति हो सकने की बात पर भी विचार किया जाता है। भारतीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा मानवीय साधनों को उपयोगी बनाना शैक्षिक योजनाओं का अनेक लक्ष्यों में से एक प्रमुख लक्ष्य है।
6. केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा समान रूप से रूचि लेना - भारत एक संघात्मक राज्य होते हुए भी एकात्मक है। अतः इस दृष्टि से शैक्षिक नियोजन में केवल राज्य सरकारों ही रूचि नहीं लेती वरन् केन्द्रीय सरकार भी समान रूप से रूचि ले रही है। शैक्षिक नियोजन में किसी क्षेत्र विशेष को महत्व न देकर सम्पूर्ण राष्ट्र को महत्व दिया जाता है।

7. स्थानीय आवश्यकताओं को प्रमुखता - भारतीय शैक्षिक नियोजन में यदि राष्ट्रीय स्तर की बातों को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है तो दूसरी ओर स्थानीय आवश्यकताओं की उपेक्षा भी नहीं की जाती है शैक्षिक नियोजन में स्थानीय आवश्यकताओं, रुचियों तथा हितों पर विशेष रूप से विचार किया जाता है और स्थानीय शैक्षिक प्रगति हेतु प्रयास भी किये जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि स्थानीय प्रगति से लेकर राष्ट्रीय प्रगति हेतु केन्द्र व राज्य तथा स्थानीय सरकारें सहयोगी के रूप में कार्य करती हैं।

8. अल्पकालीन योजनाओं का निर्माण - भारत में शिक्षा का पर्याप्त विकास होना है। इस दृष्टि से पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अनेक शैक्षिक अल्पकालीन योजनाएं कार्य कर रही हैं जिनके माध्यम से भारत में शैक्षिक प्रगति होना सम्भव प्रतीत होता है।

9. दीर्घकालीन योजनाओं का निर्माण - भारतीय शिक्षा नियोजन के अन्तर्गत अल्पकालीन योजनाओं के साथ ही दीर्घकालीन योजनाएं भी निर्मित हो रही हैं। दीर्घ एवं अल्पकालीन योजनाओं का एक साथ समावेश होना भारतीय शैक्षिक नियोजन की प्रमुख विशेषता है।

10. भारतीय आकांक्षाओं तथा आदर्शों का संरक्षण - भारतीय शैक्षिक नियोजन में भारतीय आकांक्षाओं आदर्शों एवं मान्यताओं को विशेष महत्व दिया जाता है जिससे भारतीय को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुंचती है।

10.8 शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया

शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया में उत्तम सिद्धान्तों का पालन किया जाना आवश्यक है 'इलियट एवं मोजर, जे.बी'. सीयर्स ने सामान्य पक्ष, अनुसंधान, सतत, निश्चित, यथार्थ एवं व्यवहारिक सहभागिता तथा संशोधन जैसे पक्षों पर बल दिया है।

भारत में योजनाएं बनाने हेतु योजना आयोग की स्थापना सन् 1950 ई0 में की गयी थी जिसमें आठ सदस्य (मन्त्रिमण्डल के सदस्य, परामर्शदाता, विशेषज्ञ, प्रशासक आदि) सम्मिलित रहते हैं। आयोग का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री नीतियों का निर्धारण करना, विकास हेतु नवीन कार्यक्रम तैयार करना, धन की व्यवस्था कराना एवं उसे प्रत्येक मद पर व्यय करने हेतु वितरित करना तथा योजना क्रियान्वित होने पर उसका मूल्यांकन करके प्रगति हेतु सुझाव देना आदि है। योजना बनाने की प्रक्रिया का अध्ययन हम नीचे छः चरणों के अन्तर्गत करेंगे -

1. नियोजन तैयार करना - नियोजना का प्रारूप भावी आवश्यकताओं को आधार बनाकर उपलब्ध साधनों एवं सुवधाओं के आधार पर तैयार किया जाता है। नियोजना तैयार करते समय प्रारूप को लचीला बनाया जाता है जिससे उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके। नियोजन का प्रारूप तैयार करके विचार-विमर्श के उपरान्त प्रतिवेदन से सम्बन्धित निर्देशन देने के बाद विशेषज्ञों की बैठकों में उस पर गूढ़ विचार किया जाता है। विशेषज्ञों के अतिरिक्त शिक्षाविदों के पैनल नियुक्ति होते हैं जो शिक्षा की नीतियों को ध्यान में रखकर नियोजना के प्रत्येक पहलू पर कार्य दल (वर्किंग गुप्स) के रूप में शैक्षिक प्रगति को ध्यान में रखकर विचार

करते हैं। कार्य दलों की सहायता हेतु केन्द्र एवं राज्य स्तर के शिक्षाधिकारी भी अपने कार्यक्रम और योजनाओं को विचारार्थ प्रस्तुत करते हैं जिसके आधार पर सम्पूर्ण देश अथवा राज्य विशेष की शिक्षा-प्रगति हेतु योजना तैयार की जाती है।

2. स्मरण-पत्र - विभिन्न कार्यदलों एवं कार्यक्रमों के आधार पर योजना आयोग एक स्मरण-पत्र (मेमोरेण्डम) तैयार करता है। जिसे राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष पुनः रखा जाता है। परिषद अपने मूल सुझावों के साथ उसे पुनः आयोग के पास विचारार्थ भेज देती है।

3. विधानसभा अथवा संसद की स्वीकृति - नियोजन के प्रारूप पर गहन विचार होने के बाद अन्तिम स्वरूप प्रदान किया जाता है। इसके उपरान्त उसे विधानसभा अथवा संसद की आवश्यक स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। राज्यों में विधानसभा तथा केन्द्र में संसद की स्वीकृति मिल जाने पर योजना को क्रमशः राज्यों एवं सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित किया जाता है।

4. क्रियान्वयन - स्वीकृति योजना को केन्द्र में केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें क्रियान्वित करती हैं। शिक्षा विभाग के अधिकारी एवं कर्मचारियों को आवश्यक निर्देश के साथ क्रियान्वयन के आदेश प्रसारित किये जाते हैं जिसके आधार पर योजनानुसार कार्य प्रारम्भ होता है।

5. मूल्यांकन - योजना की क्रियान्विति के पश्चात् उसका मूल्यांकन करना आवश्यक है। क्रियान्विति के समय उसके प्रत्येक पहलू पर कड़ी नजर रखी जाती है और प्राप्त अनुभवों एवं परिणामों के आधार पर योजना का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन के आधार पर यदि आवश्यक हो तो थोड़ा-सा परिवर्तन करके योजना को सफलतापूर्वक लागू करने का प्रयास किया जाता है। मूल्यांकन द्वारा योजना कितनी लाभप्रद है? उसमें कौन-कौन से संशोधन आवश्यक है? उसे लागू करने में कौन-कौन सी कठिनाइयाँ आ रही हैं? उन कठिनाइयों का निवारण किस प्रकार किया जा सकता है तथा उसे पूर्णरूपेण लागू करने में कितना समय लग सकता है? आदि बातों का पता हमें चला जाता है। मूल्यांकन का प्रमुख लक्ष्य योजना को सफलतापूर्वक लागू करना ही है।

10.9 शिक्षा व्यवस्था

“प्रशासन एक संगठन है और किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य एवं सामग्री का प्रयोग है। यह उन प्रबन्धकों का विशेष कार्य है जिनको संगठन में योग्यता प्राप्त है और जो मनुष्यों और सामग्री का उसी निपुणता से प्रयोग करते हैं, जिसका इन्जीनियर भवन-निर्माण में तथा डॉक्टर मनुष्य के रोग को निदान करने में प्रयोग करते हैं।”

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा प्रशासन, संचालन एवं संगठन का विशेष महत्व है। शैक्षिक प्रशासन के अभाव में शिक्षा प्रक्रिया का उचित संचालन करना संभव नहीं है। शैक्षिक प्रशासन का प्रत्यय नवीन होते हुए भी प्रारम्भ से ही इसका क्षेत्र निरन्तर विस्तृत होता जा रहा है। शिक्षा के अंगों में समन्वय स्थापित करने, राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्धारण करने के अतिरिक्त विद्यालय वातावरण में मानवीय सम्बन्धों का सार्थक उपयोग करने की

दृष्टि से भी विद्यालय प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इसके अभाव में शैक्षिक प्रक्रिया का सफलतापूर्वक सम्पन्न हो पाना नितान्त असम्भव ही है। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक देश की शैक्षिक व्यवस्था के अन्तर्गत शैक्षिक प्रशासन को विशिष्ट महत्व प्रदान किया जा रहा है।

व्यवस्था का अर्थ - मानव जीवन को अच्छा बनाने के लिये संघर्ष करता आया है, उसने अपनी कठिनाइयों को हल करने के लिये साधनों और स्रोतों का अधिकतम प्रयोग करने का प्रयास किया है साधनों तथा स्रोतों को समुचित रूप में प्रयोग करने को 'व्यवस्था' कहते हैं। परम्परागत विचारधारा के अनुसार 'व्यवस्था' का अर्थ होता है साधनों एवं स्रोतों को निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रयोग करने के स्वरूप को 'व्यवस्था' कहते हैं। व्यवस्था के अन्तर्गत प्रमुख तीन युक्तियों को प्रयुक्त किया जाता है-

1 प्रयासों तथा स्रोतों में समन्वय स्थापित किया जाता है।

2 कार्य एवं क्रियाओं का विभाजन किया जाता है।

3 अधिकार एवं उत्तरदायित्व को आरोह क्रम में निर्धारित किया जाता है।

स्काट ने भी 'व्यवस्था' की व्याख्या की है। उनके अनुसार व्यवस्था का अंतिम उद्देश्य 'विवाद को कम करना' है। व्यवस्था के द्वारा उस वस्तु तथा व्यक्ति के महत्व को कम किया जाता है। जिससे नियोजन की सफलता में बाधा होती है। इस प्रकार व्यवस्था के द्वारा अनिश्चितता को कम करके निश्चितता तथा स्थायित्व में वृद्धि की जाती है। व्यवस्था के आधार पर वास्तविक उपलब्धियों के सम्बन्ध में पूर्व कथन दिया जाता है उदाहरण के लिये पाठ्य पुस्तकों, पाठ्य-योजनाओं तथा अभिक्रमि-अनुदेशन की व्यवस्था की जाती है, जिससे सीखने के विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है, परन्तु इसके द्वारा पाठ्यवस्तु के आन्तरिक स्वरूप तथा छात्रों के सीखने के व्यवहार स्वरूपों के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी होती है। शैक्षिक तकनीकी में इन्हीं स्वरूपों को समझने पर विशेष बल दिया जाता है।

व्यवस्था के प्रत्यय में स्थायित्व, पूर्व-कथन तथा स्वरूपों को अधिक महत्व देने से उद्योग तथा प्रबन्ध अधिक प्रभावित हुए हैं। यह विचारधारा 'शैक्षिक तकनीकी' के अर्थ के लिये भी अधिक उपयोगी तथा सार्थक है। शैक्षिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में पूर्व-कथन किया जाता है और सीखने के स्वरूपों के लिये साधनों एवं युक्तियों को निर्धारित किया जाता है इस प्रकार शैक्षिक-तकनीकी शिक्षा-व्यवस्था में स्थायित्व लाती है। व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध मानव से रहा है, इसलिये मानव प्रकृति की धारणायें इस प्रत्यय को प्रभावित करती रही हैं।

शिक्षा व्यवस्था की परिभाषा - जब हम शैक्षिक प्रशासन की चर्चा करते हैं। तो वह स्वाभाविक हो जाता है कि व्यवस्था के रूप में विवेचना किया जाये। आरम्भिक काल में समाज सरल थे, शिक्षा की व्यवस्था शिक्षक, छात्र तथा स्थान तक सीमित रहता था। कालान्तर में समाज के जटिल काम विकसित होने पर काल के अन्य संगठनों की भांति शिक्षा के संगठन में भी परिवर्तन आया है। संगठन व्यवस्थित रूप का विकास होता है। मानव शक्ति का सही उपयोग होता है।

10.10 शिक्षा पर्यवेक्षण

शिक्षा पर्यवेक्षण का अर्थ - 'पर्यवेक्षण' शब्द अंग्रेजी भाषा के Supervision शब्द का पर्याय है। पर्यवेक्षण दो शब्दों पर (Super) + अवेक्षण (Vision) से मिलकर बना है। Super का अर्थ 'असाधारण' 'अलौकिक'

अथवा, 'दिव्य' होता है तथा Vision का अर्थ 'दृष्टि' अर्थात् ऐसी दृष्टि जो दिव्य अथवा अत्यन्त सूक्ष्म हो, यह पर्यवेक्षण के अन्तर्गत आती है। कुछ विद्वानों ने इसको 'पर्यवेक्षण' भी कहा है जिसका अर्थ चारों ओर देखना है। किसी संस्था के चहुंमुखी दिशा का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना तथा विकास के लिये सुझाव देना ही पर्यवेक्षण कहा जाता है।

अतएव पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा दूसरे के कार्यों का अवलोकन करके उन्हें उचित निर्देशन भी प्रदान करना है।

जॉन ए. बार्टकी के अनुसार - 'उत्तम पर्यवेक्षण का सैदव शिक्षकों के विकास, छात्रों की उन्नति तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार से सम्बन्ध होता है।

ऐसा पर्यवेक्षण जो शिक्षा के क्षेत्र में किया जाता है, शैक्षिक पर्यवेक्षण कहलाता है। शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक, प्राचार्य एवं छात्र तथा अन्य कर्मचारी सम्मिलित होते हैं।

'शिक्षकों की उत्तम विधि, पुस्तकालय तथा प्रयोगशाला की सुविधा, क्रीड़ा क्षेत्र की सुव्यवस्था, प्राचार्य का निरीक्षण' आदि सभी कार्यों का उद्देश्य शिक्षण संस्था में पढ़ने वाले छात्रों की सर्वांगीण उन्नति में सहायता करना होता है।

“प्रधानाचार्य वरिष्ठ अध्यापक एवं शिक्षाधिकारी जब अपने सुक्षावों द्वारा शिक्षण सामग्री, शिक्षण विधि, मूल्यांकन आदि का स्तर उन्नत करने के लिये कार्य करते हैं तब ये पर्यवेक्षण की भूमिका निभाते हैं।”

अतएव शैक्षिक पर्यवेक्षण का शिक्षकों, सीखने की परिस्थितियों तथा छात्रों की उन्नति से गहरा सम्बन्ध होता है। छात्र अध्ययन की क्रिया में किस प्रकार प्रगतिशील हों, शिक्षक नवीनतम शिक्षण सामग्री का किस प्रकार प्रयोग जुटाया जायें, आदि अनेक लाभकारी कार्यों की शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्तर्गत योजना बनाई जाती है एवं इनकी सफलता-असफलता का मूल्यांकन किया जाता है। सारांश यह है कि, शैक्षिक पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जो शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में, शिक्षण संस्था की निरतन्त उन्नति तथा छात्रों की सर्वांगीण उन्नति में पूर्ण सहायक होती है।

अमरीका के राष्ट्रीय शिक्षा संगठन के प्राथमिक स्कूल के प्राचार्यों ने शैक्षिक पर्यवेक्षण के अर्थ निम्न प्रकार स्पष्ट किये हैं-

1. शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षकों के शिक्षण में सुधार, छात्रों को समझने, शिक्षण सामग्री का विकास करने में सहायक होता है।
2. इसके द्वारा पाठ्यक्रम में सुधार तथा निर्माण के लिये शोध पर बल दिया जाता है। क्रियात्मक अनुसन्धान को बढ़ावा देते हैं।
3. शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा शिक्षण की कुशलता तथा छात्रों की आवश्यकता के ज्ञान हेतु सीखने की परिस्थितियों का मूल्यांकन किया जाता है।
4. इसके द्वारा शिक्षकों को व्यावसायिक नेतृत्व एवं सहायता प्रदान की जाती है।

शिक्षा कोष - के अनुसार शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ विद्यालय सम्बन्धी इस प्रकार है-

1. शिक्षण उद्देश्यों, विधियों एवं सामग्री का चयन करना,
2. पर्यवेक्षकों, शिक्षकों तथा कार्यकर्ताओं को नेतृत्व प्रदान करना।

3. इसके विकास तथा व्यावसायिक उन्नति के लिये प्रेरणा देना तथा

4. सभी क्रियाओं में सुधार हेतु मूल्यांकन करना है।

शिक्षा पर्यवेक्षण की परिभाषाएं - शिक्षा पर्यवेक्षण के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विभिन्न विद्वानों एवं शिक्षाविदों द्वारा दी गई परिभाषायें निम्नलिखित हैं-

एडेम्स तथा डिस्के के अनुसार - “शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षण को सुधारने का एक सुनियोजित कार्यक्रम है।”

बार0 बर्टन तथा ब्रेकनर के अनुसार - “पर्यवेक्षण एक कुशल तकनीकी सेवा है जो उन अवस्थाओं का अध्ययन करने तथा उनमें उन्नति करने से सम्बन्धित होती है जो सीखने तथा छात्र विकास के चारों ओर व्याप्त होती है।”

डब्लू0 किम्बाल के अनुसार - “पर्यवेक्षण एक अच्छे शिक्षण एवं सीखने की परिस्थितियों के विकास में सहायक होता है।”

चेस्टर टी. मैकनव के अनुसार - “पर्यवेक्षण शिक्षण प्रक्रिया का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने तथा निर्देशन देने की एक विधि है। पर्यवेक्षण का अन्तिम उद्देश्य छात्रों को उत्तम शिक्षण सेवा द्वारा सभी स्तरों पर योग्य बनाना होना चाहिये।”

फ्रेड सी0 अय्यर के अनुसार - “पर्यवेक्षण समस्त शैक्षिक प्रयासों में सर्वश्रेष्ठ तथा गत्यात्मक हैं। यह अत्यन्त श्रेष्ठ इसलिये है क्योंकि यह सर्वाधिक सृजनात्मक हैं।”

माध्यमिक शिक्षा आयोग - “हमारी दृष्टि में निरीक्षक की वास्तविक भूमिका (जिसे हम शैक्षिक परामर्शदाता कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं) प्रत्येक विद्यालय की समस्याओं का अध्ययन करना है तथा इसके समस्त कार्यों के विषय में विस्तृत दृष्टिकोण अपनाना है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों की सहायता भी इस प्रकार करना है जिससे वे परामर्शदाता के परामर्श तथा संस्तुतियों का मान सकें।

शैक्षिक पर्यवेक्षण की उपर्युक्त सभी परिभाषाओं में शिक्षण प्रक्रिया में सुधार-करना शिक्षकों की क्षमताओं को विकसित करना, सीखने की दशाओं का मूल्यांकन करना, पाठ्यक्रम में सुधार करना, छात्रों की योग्यताओं में वृद्धि करना आदि का समावेश है। वास्तव में शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये एक महत्वपूर्ण साधन है। उत्तम शैक्षिक पर्यवेक्षण वहीं है जो शिक्षकों, छात्रों तथा विद्यालय की समस्त परिस्थितियों को उन्नत करता है। सारांश रूप में शैक्षिक पर्यवेक्षण को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है-

“शैक्षिक पर्यवेक्षण ऐसी विशिष्ट सेवा है जो शिक्षकों को कार्य-कुशलता तथा व्यावसायिक नेतृत्व प्रदान करती है, पाठ्यक्रम में सुधार करके शिक्षण स्तर को ऊँची करती है तथा छात्रों को समाज में उपयुक्त आचरण करने का प्रशिक्षण देती हैं।

बोध प्रश्न - 2

शिक्षा कोष - के अनुसार शैक्षिक पर्यवेक्षण का विद्यालय सम्बन्धी अर्थ है-

1. शिक्षण उद्देश्यों, विधियों एवं सामग्री का चयन करना,
2. पर्यवेक्षकों, शिक्षकों तथा कार्यकर्त्ताओं को नेतृत्व प्रदान करना।
3. इसके विकास तथा व्यावसायिक उन्नति के लिये प्रेरणा देना तथा
4. सभी क्रियाओं में सुधार हेतु मूल्यांकन करना है।

5. उपरोक्त सभी

10.11 सारांश

शिक्षा में प्रगति तभी सम्भव है जब उपलब्ध साधनों, सामग्री तथा सुविधाओं के आधार पर शैक्षिक योजनाओं का निर्माण किया जाये तथा उन योजनाओं को कार्यरूप में परिणत कराने के लिए कुशल प्रशासन की व्यवस्था हो। शिक्षा-प्रशासन और शैक्षिक नियोजन के तालमेल से ही शैक्षिक प्रगति सम्भव है। दोनों के सन्तुलित समन्वय से कार्य-कुशलता तथा क्षमता में वृद्धि होती है। संस्थागत योजना में प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्रों तथा समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारतीय शिक्षा-नियोजन की भी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर भारत में शैक्षिक प्रगति होने की सम्भावना बनी हुई है। शिक्षा नियोजन की प्रक्रिया में उत्तम सिद्धान्तों का पालन किया जाना आवश्यक है इलिग्रट एवं मोजर, जे.बी. सीयर्स ने सामान्य पक्ष, अनुसन्धान, सतत, निश्चित, यथार्थ एवं व्यवहारिक सहभागिता तथा संशोधन जैसे पक्षों पर बल दिया है। व्यवस्था के द्वारा अनिश्चितता को कम करके निश्चितता तथा स्थायित्व में वृद्धि की जाती है तथा शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये एक महत्वपूर्ण साधन है। उत्तम शैक्षिक पर्यवेक्षण वहीं है जो शिक्षकों, छात्रों तथा विद्यालय की समस्त परिस्थितियों को उन्नत करता है।

10.12 शब्दावली

सांख्यिकी - ऐसी विधियों व प्रविधियों का समावेश है, जिनके उपयोग से अथाह व अपार आँकड़ों के विशाल रूप को भी सरलापूर्वक व्यवस्थित किया जा सकता है। व उनके वास्तविक स्वरूप व पारस्परिक सम्बन्धों का स्पष्ट रूप से पता लगाया जा सकता है।

सामाजिक परिवर्तन - व्यक्तियों की क्रियाओं और विचारों में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

मूल्यांकन - मूल्यांकन के द्वारा शिक्षा-जगत में बालक ने जो प्रगति की है, उसका ज्ञान प्राप्त होता है।

10.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1 मूल्यांकन

2 समुदाय

बोध प्रश्न - 2

1 उपरोक्त सभी

10.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 माध्यमिक शिक्षा एवं विद्यालय प्रबन्धन (2009) अवधेश किशोर, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

2 शैक्षिक प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2013) सविता सिंह, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

3 स्कूल प्रबन्धन सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी (2010) जे0पी0 अग्रवाल, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

10.15 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- शिक्षा प्रशासन (2010) उमेश चन्द्र कुदेसिया , अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- विद्यालय प्रबन्धन, (2008), आर०ए०शर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठा।
- विद्यालय प्रबन्धन (2008) जे०पी० वर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठा।
- शैक्षिक प्रबन्धन के मूल तत्व (2009) देवदत्त शर्मा, अग्रवाल पब्लिकेशन (181)
- शैक्षिक संगठन, स्वास्थ्य शिक्षा एवं शिक्षण तकनीकी, डी०पी० मिश्रा, अग्रवाल पब्लिकेशन
- शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन डा० कर्ण सिंह, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी। विद्यालय प्रशासन, संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2009) एव०पी० सुखिया, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

10.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शैक्षिक नियोजन का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके उद्देश्यों का सविस्तार वर्णन कीजिए।